उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत

उठो जागो और लक्ष्य प्राप्त किये बिना विश्राम मत लो

विवेक शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द-भावधारा की एकमात्र हिन्दी मासिकी

वर्ष—१२ १९९३—सितम्बर अंक—९

इष्टदेव का हृदय-कमल में रूप अनूप दिखा। निजानन्द में रखती अविचल विमल 'विवेक शिखा'॥

सम्पादक :

डॉ० केदारनाथ लाभ

सहायक सम्पादक

शिशिर कुमार मल्लिक

सम्पादकीय कार्यालय :

रामकृष्ण निलयम्

जयप्रकाश नगर,

छपरा—८४१३०१

(विहार)

फोन। ०६१५२-४२६३९

सहयोग राशि

आजीवन सदस्य—	५०० रु०
वार्षिक—	३० रु०
रजिस्टर्ड डाक से—	४५ रु०
एक प्रति—	४ रु०

रचनाएँ एवं सहयोग-राशि संपादकीय कार्यालय के पते पर ही भेजने की कृपा करें।

श्रीरामकृष्ण ने कहा है

* नरेन्द्र शुद्ध सत्वगुणी है। मैंने देखा है कि वह अखण्ड के घरके चार में से एक तथा सप्तर्षियों में से एक है। उसके गुणों की सीमा नहीं है।

* इतना रोया, परन्तु नरेन्द्र नहीं आया। उसे एक बार देखने के लिए मेरे हृदय में बड़ी यन्त्रणा होती है, छाती के भीतर मानो कोई मरोड़ रहा है. परन्तु मेरे खिचाव को वह नहीं समझता।

* मैंने देखा केशव जिस प्रकार एक शक्ति के विकास के द्वारा संसार में विख्यात हुआ है, नरेन्द्र के भीतर उस प्रकार की अठारह शक्तियाँ पूर्ण मात्रा में विद्यमान हैं। फिर देखा, केशव और विजय का हृदय दीप शिखा के समान ज्ञान के प्रकाश से उज्ज्वल बना हुआ है। बाद में नरेन्द्र के भीतर देखा--ज्ञान-सूर्य ने उदित होकर माया-मोहरूप अज्ञान को वहाँ से अपसारित कर दिया है।

* नरेन्द्र नित्यसिद्ध है। —नरेन्द्र के भीतर सदा ज्ञानाग्नि प्रज्वलित रहकर सब प्रकार के भोजनदोष को भस्मीभूत कर देती है। इस कारण यत्र तत्र जो कुछ भी वह क्यों न खाये, उसका मन कभी कुलषित या विक्षिप्त नहीं होगा। —ज्ञानरूप खड्ग से वह समस्त माया बन्धनों को काट डालता है, इसीलिए महामाया उसे किसी प्रकार वश में नहीं ला सकती।

* जिस दिन वह जान जायेगा कि वह (नरेन्द्र) कौन है, उस दिन वह इस लोक में नहीं रहेगा। दृढ़ संकल्प की सहायता से समाधियोग के द्वारा वह उसी समय शरीर छोड़कर चला जायेगा। नरेन्द्र ध्यानसिद्ध महापुरुष है।

* नरेन्द्र लोकशिक्षा देगा।

विवेकानन्द पंचकम्

—स्वामी रामकृष्णानन्द

अनित्य दृश्येषु विविच्य नित्यं तस्मिन समाधत्त इह स्म लीलया ।
विवेक वैराग्य विशुद्धचित्तं योऽसौ विवेकी तमहं नमामि ॥१

विवेकजानन्दनिमग्नचित्तं विवेकदानैकविनोदशीलम् ।
विवेकभासा कमनीयकान्ति विवेकिनं तं सततं नमामि ॥२

ऋतंच विज्ञानमधिश्रयत् यत् निरन्तरं चादिमध्यान्तहीनम् ।
सुखं सुरूपं प्रकरोति यस्य आनन्दमूर्ति तमहं नमामि ॥३

सूर्यो यथान्धं हि तमो निहन्ति विष्णुर्यथा दुष्ट जनान् छिनत्ति ।
तथैव यस्याखिलनेत्रलोभं रूपं त्रितापं विमुखी करोति ॥४

तं देशिकेन्द्रं परमं पवित्रं विश्वस्य पालं मधुरं यतीन्द्रम् ।
हिताय नृणां नरमूर्तिमन्तं विवेक आनन्दमहं नमामि ॥५

भावार्थ :—इस संसार में अनित्य वस्तुओं से नित्य वस्तु को अलग कर जिन विवेकी ने लीला के बहाने उस नित्य वस्तु में विवेक और वैराग्य के प्रभाव से अपने पवित्र चित्त को समाहित कर लिया था, मैं उन विवेकी को प्रणाम करता हूँ ।१

विवेक से उत्पन्न आनन्द में जिनका चित्त निमग्न रहता है, जो विवेक के दान से ही आनन्दित रहते हैं, विवेक-ज्योति से जो रमणीय रूपशाली हैं, उन विवेकी परम पुरुष को मैं सदैव प्रणाम करता हूँ ।२

जिनका सुन्दर रूप सत्य और विज्ञान के सहारे निरन्तर नित्य सुख प्रदान करता है, उन आनन्दस्वरूप मूर्तिधारी को मैं नमस्कार करता हूँ ।३

सूर्य जिस प्रकार गहन अन्धकार का नाश करता है, विष्णु जैसे दुष्टों का विनाश करते हैं, उसी प्रकार जिनका अखिल नयन लोभनीयरूप त्रिताप का हरण करता है—।४

लोक कल्याण के लिए अवतीर्ण उन आचार्य प्रवर, परम पवित्र, जगत्-पालक, आनन्दमय, योगिवर, विवेकानन्द को मैं प्रणाम करता हूँ ।५

सम्पादकीय सम्बोधन

उदित उदयगिरि मंच पर

मेरे आत्म स्वरुप मित्रो,

शिकागो विश्व धर्म-महासभा में स्वामी विवेकानन्द के योगदान की शत वार्षिकी का यह पावन चेतना-वर्ष है। मैं एक उद्धरण देना चाहता हूँ।

'कुल मिलाकर हिन्दू धर्म के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तथा विशिष्ट प्रतिनिधि स्वामी विवेकानन्द थे और निःसन्देह वे धर्म-महासभा के सर्वाधिक लोकप्रिय एवं प्रभावशाली व्यक्ति थे। ···उनका ईसाई या गैर-ईसाई किसी भी वक्ता की अपेक्षा अधिक उत्साह के साथ स्वागत हुआ था। वे जहां कहीं भी जाते, श्रोताओं की भीड़ लग जाती और लोग उनका प्रत्येक शब्द बड़े ध्यानपूर्वक सुनते। कट्टर से कट्टर ईसाई भी उनके बारे में कहते कि वे मनुष्यों में महाराजा हैं।'—यह उक्ति है शिकागो धर्म-महासभा की विज्ञान-शाखा के सभापति श्रीमरविनमेरी स्नेल की जो उन्होंने अपनी अध्यक्षता में हुए विज्ञान शाखा के अधिवेशनों में स्वामी विवेकानन्द के व्याख्यान सुनकर व्यक्त की थी। वस्तुतः शिकागो की विश्व धर्ममहासभा में भाग लेकर स्वामी जी ने न केवल हिन्दू धर्म की खोयी गरिमा को विश्व में प्रतिष्ठित किया, बल्कि धर्म के समस्त भेदों की दीवार ढाहकर, उसकी जर्जर रूढ़ियों को ध्वस्त कर उसे उसके वास्तविक एवं शुद्ध रूप में प्रस्तुत कर अपने पापों के भय से आक्रान्त विश्व मानवता को आशा और आनन्द का हीरक-आलोक भी प्रदान किया।

अमेरिका की शिकागो महानगरी में आज से सौ वर्ष पूर्व ११ सितम्बर १८९३ से २७ सितम्बर, १८९३ तक जिस धर्म महासभा का आयोजन हुआ था वह कोलम्बस के जन्म की चतुःशताब्दी के अवसर पर आयोजित मेला कोलम्बियन एक्सपोजीशन के एक अंग के रूप में हुआ था। श्री चार्ल्स केरल बोनी इसके अध्यक्ष थे। इस मेले का मुख्य उद्देश्य था—'पाश्चात्य ज्ञान तथा भौतिक विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी की प्रगति से विश्व को अवगत कराना, और चूँकि धर्म भी मानव सभ्यता का एक महत्वपूर्ण आयाम है, मेले के साथ ही एक धर्म सम्मेलन बुलाने का भी निर्णय लिया गया था।' लेकिन धर्म महासभा ही इस मेले का सबसे आकर्षक एवं महत्वपूर्ण अंग हो गयी।

इस धर्म महासभा के आयोजकों की यह मानसिकता थी कि वे इस धर्म-मंच पर यह सिद्ध कर देंगे कि चूँकि इसाई धर्म ही विश्व का सर्वश्रेष्ठ धर्म है अतः संसार के निवासियों को चाहिए कि अपने-अपने धर्म का परित्याग कर ईसाई धर्म को ही स्वीकार कर लें। इस धर्मसभा की कार्यकारिणी समिति के अध्यक्ष, प्रथम प्रेसबिटेरियन चर्च के धर्म नेता श्री जॉन हेनरी बैरोज ने कहा था—"हमारा विश्वास है कि ईसाई धर्म अन्य सभी धर्मों का स्थान ले लेगा, क्योंकि बाकी धर्मों में जो सत्य हैं, वे सभी तो ईसाई धर्म में हैं ही, इसमें और भी अधिक सत्य हैं, क्योंकि यही धर्म एक अद्वितीय मुक्तिदाता भगवान के बारे में बोलता है। यह सत्य है कि प्रकाश के साथ अन्धकार की मित्रता सम्भव नहीं, परन्तु अल्प

साहचर्य अवश्य हो सकता है। ऐसा कोई भी देश नहीं, जहाँ भगवान ने अपने
आलोक के साथ उसका साहचर्य अवश्य हो सकता है। ऐसा कोई भी देश नहीं, जहाँ भगवान ने अपने
सन्देश का प्रचार न किया हो, और जिन्होंने क्रॉस के पूर्ण आलोक की उपलब्धि कर ली है, उन्हें चाहिए
कि वे अल्पालोक में भटकने वालों के प्रति भ्रातृभाव का पोषण करें।" जाहिर है कि अनेक ईसाई यह
नहीं चाहते थे कि इसाई धर्म के साथ एक ही मंच पर समानता के आधार अन्य धर्मों के प्रवक्ता
एकत्र हों। स्वयं कैंटेबेरी के आर्च बिशप ने इस धर्म महासभा में अपने भाग नहीं लेने के कारणों का
उल्लेख करते हुए स्पष्ट शब्दों में कहा था— "मैं दूरी अथवा सुयोग-सुविधा के चलते असुविधा का
अनुभव नहीं कर रहा हूँ, बल्कि इसका कारण यह है कि ईसाई धर्म ही एकमात्र धर्म है। और मेरी
समझ में यह नहीं आता कि अन्य आने वाले सदस्यों को समानता का दर्जा दिये बिना और उनके मतों
व दावों की तुल्यता माने बिना, ईसाई धर्म किस प्रकार इसके एक अंग के रूप में गृहीत होगा।" स्वयं
स्वामी जी ने धर्म महासभा के बाद अपने एक पत्र में लिखा था, "ईसाई धर्म अन्य धर्मों की अपेक्षा
श्रेष्ठतर हैं, यही प्रमाणित करने के लिए धर्म-महासभा का आयोजन हुआ था।" एक अन्य अवसर पर
उन्होंने कहा था –"मुझे लगता है कि अन्य धर्मों का तमाशा बनाने के लिए ही धर्म-महासभा का
आयोजन हुआ था।"

इसके बावजूद अमेरिका में ऐसे लोगों का अभाव नहीं था जो उदारमना थे। इसीलिए
उन लोगों ने स्वामी जी की भावनाओं और विचारों का जोरों की करतल ध्वनि से बारम्बार स्वागत
कर अपनी प्रशंसा, सहमति और स्वीकृति प्रदान की थी।

इस धर्म महासभा के पूर्व भी विश्व के विभिन्न देशों में समय-समय पर विभिन्न धर्मावलम्बियों
ने सभाएँ की थीं। किन्तु धर्म के इतिहास में यह प्रथम अवसर था जब विश्व के प्रमुख धर्मों के गुरुओं
ने एक साथ एक मंच पर बैठ कर धर्म-चर्चा की थी। इसमें ईसाई धर्म के अतिरिक्त हिन्दू, जैन, बौद्ध,
कनफ्यूशियन, शिन्तो, इस्लाम तथा पारसी धर्मों के आचार्यों ने भाग लिया था। लेकिन इस महासभा
की परिणति देखकर प्रतीत होता है मानो यह महासभा स्वामी विवेकानन्द के भावादर्शों की प्रस्तुति
और स्वीकृति के लिए ही आयोजित की गयी थी।

अमेरिका जाने के पूर्व स्वयं स्वामीजी ने अपने गुरुभाई स्वामी तुरीयानन्द जी से कहा था—
"हरिभाई, धर्म महासभा इसी (अपनी ओर इंगित कर) के लिए हो रही है। मेरा मन ऐसा ही कह
रहा है। शीघ्र ही तुम्हें इसका प्रमाण देखने को मिलेगा" और स्वामीजी का यह पूर्व कथन अक्षरशः
सत्य सिद्ध हुआ।

११ सितम्बर, १८९३ को धर्म महासभा के प्रथम सत्र में अध्यक्ष द्वारा बोलने को बुलाये जाने पर
बार-बार 'नहीं, अभी नहीं" कहनेवाले स्वामी विवेकानन्द जब उसी दिन के अपराह्न सत्र में देवी सरस्वती
को वन्दना कर बोलने खड़े हुए तो एक दैवी चमत्कार हो गया। मिथिला में सीता स्वयंवर के अवसर
पर समस्त राजाओं द्वारा हार-थक कर बैठ जाने पर अन्त में शिव के पिनाक को तोड़ने जब किशोर वय
श्रीरामचन्द्र उठ खड़े हुए तो लगा—

उदित उदयगिरि मंच पर, रघुवर बाल पतंग।
विकसे संत सरोज सब, हरषे लोचन भृंग॥

अर्थात् मंचरूपी उदयाचल पर श्रीराम रूपी बाल सूर्य के उदय होते ही सब सन्त रूपी कमल खिल उठे और नेत्र रूपी भौंरे हर्षित हो गये। ठीक उसी प्रकार समस्त धर्मों के प्रतिनिधियों के अपने-अपने मत पर प्रकाश डालकर बैठ जाने के बाद जब विश्व धर्म के मंच रूपी उदयाचल पर युवा-वय के विवेकानन्द बोलने उठे तो आर्ट गैलरी में उपस्थित प्रायः दस हजार श्रोताओं और अनेक धर्माचार्यों में उत्सुकता मिश्रित हर्ष की लहर छा गयी और उनके मुख से 'अमेरिकावासी बहनों और भाइयों'—इन चार शब्दों के सम्बोधन मात्र से जय जयकार की हर्ष ध्वनि सूचित तालियों की कर्ण भेदी गड़गड़ाहट दो मिनटों तक होती रही। अपने संक्षिप्त भाषण में उस दिन उन्होंने धार्मिक कट्टरता एवं साम्प्रदायिक उन्माद के विरुद्ध शंखनाद करते हुए घोषणा की—'साम्प्रदायिकता, हठधर्मिता और उनकी वीभत्स वंशधर धर्मान्धता इस सुन्दर पृथ्वी पर बहुत समय तक राज्य कर चुकी हैं। वे पृथ्वी को हिंसा से भरती रहती हैं उसको बारम्बार मानवता के रक्त से नहलाती रही हैं, सभ्यताओं को विध्वस्त करती और पूरे-पूरे देशों को निराशा के गर्त में डालती रही हैं। यदि ये वीभत्स दानवी न होतीं, तो मानव-समाज आज की अवस्था से कहीं अधिक उन्नत हो गया होता। पर अब उनका समय आ गया है और मैं आन्तरिक रूप से आशा करता हूँ कि आज सुबह इस सभा के सम्मान में जो घंटा-ध्वनि हुई है, वह समस्त धर्मान्धता का, तलवार या लेखनी के द्वारा होनेवाले सभी उत्पीड़नों का तथा एक ही लक्ष्य की ओर अग्रसर होने-वाले मानवों की पारस्परिक कटुताओं का मृत्यु-निनाद सिद्ध हो।"

अपने कथन के समर्थन में स्वामीजी ने हिन्दुओं की उस उदारवादी मान्यता के दो उद्धरण दिये जिनमें कहा गया है—"जैसे विभिन्न नदियाँ भिन्न-भिन्न स्रोतों से निकलकर समुद्र में मिल जाती हैं, उसी प्रकार हे प्रभो! भिन्न-भिन्न रुचि के अनुसार विभिन्न टेढ़े-मेढ़े अथवा सीधे रास्ते से जानेवाले लोग अन्त में तुझमें ही आकर मिल जाते हैं।" तथा—"जो कोई मेरी ओर आता है—चाहे किसी प्रकार से हो—मैं उसको प्राप्त होता हूँ। लोग भिन्न-भिन्न मार्ग द्वारा प्रयत्न करते हुए अन्त में मेरी ही ओर आते हैं।"

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि अपने इस संक्षिप्त भाषण से ही स्वामीजी ने धार्मिक कट्टरता, धर्मान्धता, साम्प्रदायिकता और 'एक धर्म दूसरे धर्म की अपेक्षा श्रेष्ठ है' की संकीर्ण मानसिकता के कठोर पिनाक को वैसे ही अनायास ही खंड-खंड कर डाला जैसे बिना प्रयास के ही गजराज कमल-नाल को तोड़-मरोड़ कर जड़ से उच्छिन्न कर डालता है। इसीसे भगिनी निवेदिता ने कहा है, "विश्व-धर्म-महासभा के सम्मुख स्वामीजी के अभिभाषण के सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि जब उन्होंने अपना भाषण आरम्भ किया, तो विषय था, 'हिन्दुओं के धार्मिक विचार', किन्तु जब उन्होंने अन्त किया, तब तक हिन्दू धर्म की सृष्टि हो चुकी थी।"

इसी धर्म-महासभा में १९ सितम्बर को हिन्दू धर्म पर अपने विख्यात निबन्ध के निष्कर्ष के रूप में धार्मिक सद्भाव की घोषणा करते हुए स्वामीजी ने जो कहा वह आज के सन्दर्भ में भारत ही नहीं, सारे विश्व के लिए प्रेरणा का प्रकाश-स्तम्भ है। उन्होंने कहा, "यदि कभी कोई सार्वभौमिक धर्म होना है, तो वह किसी देश या काल से सीमाबद्ध नहीं होगा, वह उस असीम के सदृश ही असीम होगा, जिसका वह उपदेश देगा, जिसका सूर्य श्रीकृष्ण और ईसा के अनुयायियों पर, सन्तों पर और पापियों पर समान रूप से प्रकाश विकीर्ण करेगा, जो न तो ब्राह्मण होगा, न बौद्ध, न ईसाई और न इस्लाम, वरन् इन

सबकी समष्टि होगा, किन्तु फिर भी जिसमें विकास के लिए अनन्त अवकाश होगा; जो इतना उदार होगा कि पशुओं के स्तर से किंचित् उन्नत निम्नतम घृणित जंगली मनुष्य से लेकर अपने हृदय और मस्तिष्क के गुणों के कारण मानवता से इतना ऊपर उठ गये उच्चतम मनुष्य तक को, जिसके प्रति सारा समाज श्रद्धानत हो जाता है और लोग जिसके मनुष्य होने में सन्देह करते हैं, अपनी बाहुओं से आलिंगन कर सके और उनमें सबको स्थान दे सके। वह धर्म ऐसा होगा, जिसकी नीति में उत्पीड़न या असहिष्णुता का स्थान नहीं होगा, वह प्रत्येक स्त्री और पुरुष में दिव्यता को स्वीकार करेगा और उसका सम्पूर्ण बल और सामर्थ्य मनुष्यता को अपनी सच्ची, दिव्य प्रकृति का साक्षात्कार करने के लिए सहायता देने में ही केन्द्रित होगा।"

२७ सितम्बर को अन्तिम अधिवेशन में भाषण देते हुए स्वामीजी ने किसी एक धर्म की अन्य धर्मों से श्रेष्ठता के विचार का जोरदार खण्डन करते हुए विश्व-मंच के माध्यम से समस्त विश्व को एक अग्नि-मन्त्र दिया—"इस धर्म-महासभा ने यह सिद्ध कर दिया है कि शुद्धता, पवित्रता और दयाशीलता किसी सम्प्रदाय विशेष की ऐकान्तिक सम्पत्ति नहीं है, एवं प्रत्येक धर्म ने श्रेष्ठ एवं अतिशय उन्नत-चरित्र स्त्री-पुरुषों को जन्म दिया है। अब इन प्रत्यक्ष प्रमाणों के बावजूद भी यदि कोई ऐसा स्वप्न देखे कि अन्यान्य सारे धर्म नष्ट हो जाएँगे और केवल उसका धर्म ही जीवित रहेगा, तो उस पर मैं अपने हृदय के अन्तःस्तल से दया करता हूँ और उसे स्पष्ट बतलाये देता हूँ कि शीघ्र ही सारे प्रतिरोधों के बावजूद, प्रत्येक धर्म की पताका पर यह लिखा रहेगा—'युद्ध नहीं—सहायता, विनाश नहीं—ग्रहण, मतभेद और कलह नहीं—मिलन और शान्ति।"

विश्व-धर्म सभा के मंच से स्वामीजी ने मानो अपने गुरुदेव श्रीरामकृष्ण के 'जितने मत उतने पथ' के सिद्धान्त की ही विशद व्याख्या प्रस्तुत कर विश्व-मानवता को एक नयी धर्म-दृष्टि प्रदान कर दी। इस विश्व मंच से उन्होंने जिस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया उसका मर्म यह है कि यदि कोई एक धर्म सत्य है तो अन्य सारे धर्म भी सत्य हैं। इसलिए विभिन्न धर्मों के बीच संघर्ष करना अधार्मिकता और संकीर्णतापूर्ण आचरण है।

इस धर्म-सभा में स्वामीजी ने हिन्दू धर्म के उस पक्ष का प्रतिनिधित्व किया जो साम्प्रदायिकता की सीमा से परे मात्र धर्म है, शुद्ध सनातन वैदिक धर्म और स्वामीजी की दृष्टि में 'वेदों का अर्थ कोई ग्रन्थ नहीं है। वेदों का अर्थ है, विविध समयों पर विभिन्न व्यक्तियों द्वारा आविष्कृत आध्यात्मिक नियमों का संचित कोष।'

इस विश्व-मंच से दिये गये स्वामी विवेकानन्द के प्रेरक व्याख्यानों ने और सन्देशों ने अमेरिका और इंगलैण्ड वासियों पर विस्मयकारी प्रभाव छोड़ा जब डार्विन के विकासवादी सिद्धान्त से कट्टर ईसाइयत को गहरा आघात लग चुका था। विवेकानन्द के आध्यात्मिक विकास के सन्देशों ने उन लोगों में एक सकारात्मक आशा का संचार किया जो एक ऐसे धर्म की तलाश कर रहे थे जिसका आधुनिक विज्ञान खंडन नहीं कर पाता, एक ऐसा दर्शन जो नयी शताब्दी में प्रवेश करते हुए उनकी आशा के अनुरूप होता।

इसी विश्व मंच से स्वामीजी ने भारत की प्राचीन सांस्कृतिक परम्परा पर ऐसा विलक्षण प्रकाश डाला जिससे पश्चिमी देशवासी अभिभूत हुए बिना नहीं रह सके, साथ ही इसी मंच से दिये गये स्वामीजी के व्याख्यानों ने पराधीन एवं विधर्मियों द्वारा लांछित भारतवासियों में पहली बार अपनी गौरवोज्वल धार्मिक एवं सांस्कृतिक विरासत के प्रति अपार गर्व एवं अखण्ड श्रद्धा का बोध हुआ। पहली बार उन्हें बोध हुआ कि राजनैतिक दृष्टि से पराभूत होने पर भी विश्व को देने के लिए अब भी उनके पास अमूल्य निधि है। आज भी वे विश्व गुरु होने की हैसियत रखते हैं।

श्रीमती एनी बेसेन्ट ने विश्व-मंच पर स्वामी विवेकानन्द के योगदान की चर्चा करते हुए लिखा था—'शिकागो के धूम्र मलिन क्षितिज पर भारतीय सूर्य के समान दीप्तिमान, सिंह के समान उन्नत, सिर, अन्तर्भेदी दृष्टि, चंचल ओष्ठ, मनोहर तथा द्रुत चाल, गैरिक वस्त्रों में विभूषित एक महिमामय मूर्ति - ऐसी हुई स्वामी विवेकानन्द के बारे में मेरी धारणा, जब मैं महासभा के प्रतिनिधियों के लिए निर्धारित कमरे में पहली बार उनसे मिली।… आयु में सब से कम होकर भी, उत्सुक दर्शकों से घिरे हुए वे इस बात को मानने के लिए कतई राजी न थे कि जिस प्राचीन धर्मके वे प्रवक्ता थे, वह किसी भी दृष्टि से वहाँ उपस्थित सर्वश्रेष्ठ धर्म से विन्दु मात्र भी न्यून है। उनके अंग-अंग से देश तथा जाति का गर्व फूट-पड़ता-सा प्रतीत होता था। चंचल, तेज और उद्धत पश्चिम में अपनी इस सन्देशवाहक सन्तान को भेजकर भारत को लज्जित होने का कोई कारण नहीं। वे भारतवर्ष का सन्देश लेकर आये थे और भारत के नाम पर ही उन्होंने धर्म-प्रचार किया।…विशाल जनसमुदाय भावविभोर होकर उनके मुख से उच्चरित शब्दों के लिए कान खड़े रखता था कि कहीं वह एक भी शब्द से वंचित न रह जाए, एक भी उच्चारण का लहजा छूटा न रह जाय। एक श्रोता कह उठा, 'ऐसे व्यक्ति को हमलोग विधर्मी कहते हैं! और उसके देश में मिशनरी भेजते हैं! उचीत तो यह होगा कि वे लोग ही हमारे बीच मिशनरी भेजें।" शिकागो धर्म महासभा में स्वामी विवेकानन्द के योगदान की शतवार्षिकी के अवसर पर आज समग्र भारत उनके प्रति अपनी कृतज्ञता के सुमन अर्पित करता है। हमारा कर्तव्य है कि धर्म महासभा में व्यक्त स्वामीजी के धर्मादर्शों को क्रियान्वित करने का हम हर सम्भव प्रयास करें। जय स्वामीजी।

किसी की निन्दा मत करो। यदि दुःख-विपत्ति आये तो समझो ईश्वर तुम्हे साथ खेल कर रहे हैं और यही समझकर दुःख में भी परम सुखी रहो।

—स्वामी विवेकानन्द

स्वामी विवेकानन्द का व्यक्तित्व

स्वामी विवेकानन्द के यदि कुछ चित्र हमें प्राप्त न होते तो शायद उनके शारीरिक स्वरूप के बारे में हम पूर्णतया अनभिज्ञ रहते। मेरी लुई वर्क का विस्मय है, "भारतीय लेखकों ने केवल उनके आध्यात्मिक व्यक्तित्व को उजागर किया है, निजी स्वरूप को नहीं, यह जानते हुए भी कि हिन्दू अपने आराध्य के बारे में सुनता नहीं अघाता, फिर भी हिन्दू जीवनी लेखक इतने अयथार्थवादी क्यों थे ? यह मेरे लिए अनुत्तरादायी प्रश्न है।" यह कमी उस समकालीन "अमेरिकन-प्रेस" ने नहीं रहने दी थी। इसकी विस्तृत जानकारी को खोजने और प्रकाश में लाने का श्रेय इन्हीं महीयसी को है। मेरी लुई बर्क की पुस्तक, "स्वामी विवेकानन्द इन द वेस्ट – न्यू डिस्कवरीज" में इसका संकलन हुआ है। इस प्रकार इनके द्वारा स्वामीजी का शारीरिक एवं मानसिक गठन उजागर हुआ है।

१. शरीर—स्वामीजी शरीर के गठीले मध्यम ऊँचाई से तनिक अधिक लम्बे थे। "फ्रेनोलाजिक जनल" ने उनकी ऊँचाई पाँच फुट साढ़े आठ इन्च (१७४ से० मी०) तथा भार एक सौ सत्तर पौण्ड (७७ कि० ग्रा०) निर्धारित किया था। न्यूयार्क हेरल्ड ने १८९६ ई० में लिखा था, "उनका एक अनोखी आदत थी—वे अचम्भे में डाल देने वाली मात्रा में ऊँचे अथवा ठिगने हो जाते थे।" वे बलिष्ठ दिखाई देते थे और उनकी चाल-ढाल राजसी, शालीन तथा नितांत आत्मबोध रहित थी। श्रीमती राइट ने स्वामीजी के प्रथम दर्शन की संकल्पना अपनी माँ को एक पत्र के द्वारा दी थी 'सर्व आश्चर्य उत्पन्न करने वाला लम्बा गेरुआ वस्त्र पहने वे शुक्रवार को आये थे। उनमें अत्यन्त शानदार आकर्षण था। उसका मस्तक उन्नत-प्राच्य दृष्टि से उत्कृष्ट था।" बाद में किसी और समय अपनी निजी टिप्पणियों के आधार पर उन्होंने लिखा उनका कपाल ग्रीवाधनुष तनाव में समादेशक गरिमा तथा प्रभावोत्पादकता उत्पन्न करती थी जिसे जीभर कर देखने के लिए लोग ठहर जाते थे।" इसी प्रकार मेरी फंक का प्रथम दर्शन-संस्मरण है "अब भी, मैं अन्तर्दृष्टि से उन्हें डिट्रोयिट के मंच पर चढ़ते हुए देखती हूँ—एक राजसी, ओजस्वी सशक्त भव्य तथा प्रताभुसम्पन्न आकृति।" स्वामीजी का ढाँचा उनके गेरुआ अंगरखा व केसरिया साफे की मोहकता को उभार देता था और उनकी इस वेश-भूषा को "शाही परिधान" कहा जाता था। एक बार उन्हें "बॉल्टीमोर ओरियोल वस्त्र" धारण किये लिखा गया है। बॉल्टीमोर ओरियोल—एक प्रकार की गहरे नारंगी व काले पंखों वाली चिड़िया का नाम है।

२. मुखमण्डल—स्वामीजी का चेहरा मंत्रमुग्ध कर देता था। वह "असाधारणतम स्वरूपवान" था। श्रीमती कॉस्टेन्स टाइन लिखती हैं, "उस मुखड़े का अद्भुत सौन्दर्य क्लासिक तक्षण-शिल्प की मूर्ति के समान था। उनके स्वरूप का वर्णन, "साँवला सा", "जैतून हरित-वर्ण" तथा "ताम्रवर्ण-रेड इण्डियन के समान" आदि शब्दों में हुआ था। अरुणिमा आवृत होने पर उनका स्वरूप "ज्योतिमय-रक्त-वर्ण" के अनुरूप हो जाता था जैसा कि ब्रूकलिन में हुआ था। उनकी आकृति "सम तथा वर्तुलाकार" थी। वह आनन-"सुकोमल प्रज्ञासंपन्न व चलिष्णु" एवं बलिष्ठ किन्तु सुसंस्कृत" था। उनका "स्थलानुरेख प्रज्ञात्मकता तथा संवेदनशीलता को एक साथ अभिव्यक्त करता था।" उनके केश घने तनिक घुंघराले तथा "मध्यरात्रि-सेकाले" थे और साफा न होने पर वे "भृकुटि तक आते" थे। उनके दाँत जिन्हें हम उनके चित्रों में नहीं देखते 'सीधे सम तथा धवल

मुक्ता" के समान थे। स्वामीजी का अत्यन्त अद्भुत आकर्षण उनकी आँखों में था। वे बड़ी-बड़ी और काली थीं। समाचार पत्रों ने उनके नेत्रों को "अत्यन्त देदीप्यमान", "चमकदार" 'स्फुलिंग-वान", "विलक्षण", 'ज्योतिर्मय", "पैगम्बरी समुत्साह की चमक लिए हुए", "काली, गूढ़ एवं वेधनशील", तथा "अतुल आध्यात्मिकता की सूचक" लिखा था. किन्तु मेरी लुई बर्क की समीक्षा है, "ये वे आँखें थीं जिन्होंने ईश्वर को देखा था, और वे अपनी अपरिमित गहराई में अनन्त के प्रकाश को धारण करती थीं।',

३. वाणी—स्वामीजी की वाणी की तुलना प्रायः वाद्य-यंत्रों से होती थी। श्रीमती राइट लिखती हैं "जब वे भाव प्रवण गंभीर उद्घोष करते थे तो उनकी "सुन्दर वाणी गम्भीरतम घण्टानाद' में बदल जाती थी।" इमा काल्वे (सुप्रसिद्ध ओपेरा सिंगर) ने—"वाणी के प्रशंसनीय स्वरविन्यास की "चाइनीज गाँग' की स्पन्दन-शीलता" हेरिट मोनरो ने, कांस्य घन्टानाद की गम्भीरता तथा मरी फँक ने सम्पूर्ण संगीत-अभी "इओलिन हार्प' के सुकोमल स्वरों जैसा और फिर "गम्भीर, कंपायमान् अनुनाद" कहा था। विभिन्न समाचारपत्रों की टिप्पणियाँ, 'सुमधुर संगीत—भले ही आप एक शब्द न समझें हों", "अगाध एवं सांगीतिक", "प्रचुर एवं सुस्वनिक", "प्रेरणात्मक एवं प्रभावशाली" तथा "श्रोताओं में विद्युत आवेशन करने वाली आवाज" थी। जोसेफिन ने रोमा रोलाँ से कहा था, 'उनकी वाणी में 'वायोलीनचेलो' की मधुरता थी जो अथाह स्पन्दनयुक्त गांभीर्य वैषम्यहीनता लिये होती थी और हृदय एवं हॉल दोनों को लबालब भर देती थी। और जब श्रोतागण मंत्रमुग्ध हो जाते थे तब वे उन्हें अवरोहण की तीव्र मृदुता द्वारा आत्मविभोर कर देते थे।"

शिकागो धर्म-महासभा के समक्ष स्वामी विवेकानन्द एक उच्चकोटि के पटु वक्ता के रूप में उभरे थे। इसके पश्चात् उनके अनेकों व्याख्यान हुए, और अमेरिका के समाचार पत्रों में उनकी बहुत प्रशंसा हुई थी। मेरी लुई बर्क ने इन समाचारपत्रों की पुरानी फाइलों से वृहत संकलन किया है किन्तु उनमें से यहाँ कुछ चुनी हुई टिप्पणियों के माध्यम से उनके मानसिक गठन को समझा जा सकता है। डिट्रोयिट रिपोर्टर ने लिखा था, "यह बिधर्मी! हमारे चबूतरों एवं मंचों से सुनी जाने वाली अंग्रेजी भाषा से अधिक सुरुचि-पूर्ण अंग्रेजी बोलता है और अपने विवरणों को वाग्वैदग्ध्य से ऐसे सरस बनाता है जिसकी बराबरी कोई भी समकालीन लोक प्रचारक, जिन्हें हमने सुना है, नहीं करता है।" क्रिटिक को ल्यूसी मोनरो ने लिखा था, "वह बिना नोट्स रखे बोलता है और अपने तथ्यों एवं निष्कर्षों को अत्यन्त कलात्मक ढंग एवं विश्वासोत्पादक सद्भाव से प्रस्तुत करता है तथा समृद्ध व आत्मप्रेरक वाग्मिता द्वारा उभारता है।" एक अन्य प्रतिवेदक ने लिखा था, "वह अंग्रेजी सुस्पष्ट ही नहीं अपितु धारा प्रवाह बोलता है। उसके विचार नयी-नयी चिनगारियों के समान उसकी जुबान से निपुण एवं विस्मयकारी प्रचुर अलंकृत भाषा में बहते हैं। वह विचारों का कलाप्रेमी, आस्था में आदर्शवादी तथा मंच पर एक नाटककार है।" मेमफिस कामर्शियल ने लिखा था, "उसकी विज्ञता विषयों के विस्तृत फैलाव को अंगीकार करती है और उसका ज्ञान इतना व्यापक है कि विभिन्न विज्ञानों, धर्मशास्त्रों, कला व साहित्य के विशेषज्ञ भी उसकी अत्यन्तता को आत्मसात् करते हैं।" डिट्रोयिट ने उनकी आलोचना पद्धति के लिए लिखा, "यदि वह किसी अरुचिपूर्ण धारणा अथवा प्रथा पर प्रहार करता है तो सुई चुभाता है, भाला नहीं भोंकता।" सारांश में मेरी लुई बर्क लिखती हैं, "विनम्रता व पांडित्य, सरलता व बुद्धिमत्ता के संयोजन ने उन्हें उनके संपर्क में आने वाले प्रत्येक व्यक्ति का परमप्रिय बना दिया था।"

धर्म महासभा : स्वागत का उत्तर

(विश्व-धर्म-महासभा, शिकागो, ११ सितम्बर, १८९३ ई०)

अमेरिकावासी बहनो तथा भाइयो,

आपने जिस सौहार्द और स्नेह के साथ हमलोगों का स्वागत किया है, उसके प्रति आभार प्रकट करने के निमित्त खड़े होते समय मेरा हृदय अवर्णनीय हर्ष से पूर्ण हो रहा है। संसार में सन्यासियों की सबसे प्राचीन परम्परा की ओर से मैं आपको धन्यवाद देता हूँ; धर्मों की माता की ओर से मैं आपको धन्यवाद देता हूँ; और सभी संप्रदायों एवं मतों के कोटि-कोटि हिन्दुओं की ओर से भी धन्यवाद देता हूँ।

मैं इस मंच पर से बोलने वाले उन कतिपय वक्ताओं के प्रति भी धन्यवाद ज्ञापित करता हूँ, जिन्होंने प्राची के प्रतिनिधियों का उल्लेख करते समय आपको यह बतलाया है कि सुदूर देशों के ये लोग सहिष्णुता का भाव विविध देशों में प्रसारित करने के गौरव का दावा कर सकते हैं। मैं एक ऐसे धर्म का अनुयायी होने में गर्व का अनुभव करता हूँ, जिसने संसार को सहिष्णुता तथा सार्वभौम स्वीकृति, दोनों की ही शिक्षा दी है। हम लोग सब धर्मों के प्रति केवल सहिष्णुता में हीं विश्वास नहीं करते, वरन् समस्त धर्मों को सच्चा मानकर स्वीकार करते हैं। मुझे एक ऐसे देश का व्यक्ति होने का अभिमान है, जिसने इस पृथ्वी के समस्त धर्मों और देशों के उत्पीड़ितों और शरणार्थियों को आश्रय दिया है। मुझे आपको यह बतलाते हुए गर्व होता है कि हमने अपने वक्ष में यहूदियों के विशुद्धतम— अविशिष्ट अंश को स्थान दिया था, जिन्होंने दक्षिण भारत आकर उसी वर्ष शरण ली थी, जिस वर्ष उनका पवित्र मंदिर रोमन जाति के अत्याचार से धुल में मिला दिया गया था। ऐसे धर्म का अनुयायी होने में मैं गर्व का अनुभव करता हूँ जिसने महान जरथुष्ट्र जाति के अवशिष्ट अंश को शरण दी और जिसका पालन वह अब तक कर रहा है। भाइयो, मैं आपलोगों को एक स्तोत्र की कुछ पंक्तियाँ सुनाता हूँ जिसकी आवृत्ति प्रतिदिन लाखों मनुष्य किया करते हैं :

रुचीनां वैचित्र्यादृजुकुटिलनाना पथजुषाम्।
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव॥

"जैसे विभिन्न नदियाँ भिन्न-भिन्न स्रोतों से निकलकर समुद्र में मिल जाती हैं, उसी प्रकार हे प्रभो ! भिन्न-भिन्न रुचि के अनुसार विभिन्न टेढ़े-मेढ़े अथवा सीधे रास्ते से जाने वाले लोग अन्त में तुझमें ही आकर मिल जाते हैं।"

यह सभा, जो अभी तक आयोजित सर्वश्रेष्ठ पवित्र सम्मेलनों में से एक है स्वतः हीं गीता के इस अद्भुत उपदेश का प्रतिपादन एवं जगत् के प्रति उसकी घोषणा है :

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः॥

"जो कोई मेरी ओर आता है—चाहे किसी प्रकार से हो—मैं उसको प्राप्त होता हूँ। लोग भिन्न-भिन्न मार्ग द्वारा प्रयत्न करते हुए अंत में मेरी ही ओर आते हैं।"

साम्प्रदायिकता—हठधर्मिता और उनकी वीभत्स वंशधर धर्मान्धता इस सुन्दर पृथ्वी पर बहुत समय तक राज्य कर चुकी हैं। वे पृथ्वी को हिंसा से भरती रही हैं, उसको वारम्वार मानवता के रक्त से नहलाती रही हैं, सभ्यताओं को विध्वस्त करती और पूरे-पूरे देशों को निराशा के गर्त में डालती रही हैं। यदि ये वीभत्स दानवी न होती तो मानव-समाज आज की अवस्था से कहीं अधिक उन्नत हो गया होता। पर अब उनका समय आ गया है, और मैं आंतरिक रूप से आशा करता हूँ कि आज सुबह इस सभा के सम्मान में जो घंटा-ध्वनि हुई है, वह समस्त धर्मान्धता का, तलवार या लेखनी के द्वारा होने वाले सभी उत्पीड़नों का, तथा एक ही लक्ष्य की ओर अग्रसर होने वाले मानवों की पारस्परिक कटुताओं का मृत्यु-निनाद सिद्ध हो।

अंतिम अधिवेशन में भाषण

—स्वामी विवेकानन्द

(२७ सितम्बर, १८९३ ई०)

विश्व-धर्म महासभा एक मूर्तिमान तथ्य सिद्ध हो गयी है, दयामय प्रभु ने उन लोगों की सहायता की है जिन्होंने इसका आयोजन किया तथा उनके परम निःस्वार्थ श्रम को सफलता से विभूषित किया है।

उन महानुभावों को मेरा धन्यवाद है, जिनके विशाल हृदय तथा सत्य के प्रति अनुराग ने पहले इस अद्भुत स्वप्न को देखा और फिर उसे कार्यरूप में परिणत किया। उन उदार भावों को मेरा धन्यवाद, जिनसे यह सभामंच आप्लावित होता रहा है। इस प्रबुद्ध श्रोतृमंडली को मेरा धन्यवाद, जिसने मुझपर अविकल कृपा रखी है और जिसने मत-मतान्तरों के मनोमालिन्य को हल्का करने का प्रयत्न करने वाले प्रत्येक विचार का सत्कार किया है। इस समसुरता में कुछ बेसुर स्वर भी बीच-बीच में सुने गये हैं। उन्हें मेरा विशेष धन्यवाद, क्योंकि उन्होंने अपने स्वर वैचित्र्य से इस समरसता को और भी मधुर बना दिया है।

धार्मिक एकता की सर्वसामान्य भित्ति के विषय में बहुत कुछ कहा जा चुका है। इस समय मैं इस सम्बन्ध में अपना मत आपके समक्ष नहीं रखूँगा। किंतु यदि यहाँ कोई यह आशा कर रहा है कि यह एकता किसी एक धर्म की विजय और बाकी सब धर्मों के विनाश से सिद्ध होगी तो उनसे मेरा कहना है कि "भाई, तुम्हारी यह आशा असम्भव है।" क्या मैं यह चाहता हूँ कि ईसाई लोग हिन्दू हो जायँ? कदापि नहीं, ईश्वर ऐसा न करे! क्या मेरी यह इच्छा है कि हिन्दू या बौद्ध लोग ईसाई हो जायँ? ईश्वर इस इच्छा से बचाये।

बीज भूमि में बो दिया गया है और मिट्टी वायु तथा जल उसके चारों ओर रख दिये गये। तो क्या वह बीज मिट्टी हो जाता है, अथवा वायु या जल बन जाता है? नहीं; वह तो वृक्ष ही होता है, वह अपनी वृद्धि के नियम से ही बढ़ता है— वायु, जल और मिट्टी को अपने में पचाकर उनको उद्भिज पदार्थ में परिवर्तित करके एक वृक्ष हो जाता है। ऐसा ही धर्म के संबंध में भी है। ईसाई को हिन्दू या बौद्ध नहीं हो जाना चाहिए, और न हिन्दू अथवा बौद्ध को ईसाई ही। पर हाँ, प्रत्येक को चाहिए कि वह दूसरों के सार भाग को आत्मसात करके पुष्टि-लाभ करे और अपने वैशिष्ट्य की रक्षा करते हुए अपनी निजी वृद्धि के नियम के अनुसार वृद्धि को प्राप्त हो।

इस धर्म महासभा ने जगत् के समक्ष यदि कुछ प्रदर्शित किया है तो वह यह है: उसने यह सिद्ध कर दिया है कि शुद्धता, पवित्रता और दयाशीलता किसी संप्रदाय विशेष की ऐकान्तिक सम्पत्ति नहीं, एवं प्रत्येक धर्म ने श्रेष्ठ एवं अतिशय उन्नत चरित्र स्त्री-पुरुषों को जन्म दिया है। अब इन प्रत्यक्ष प्रमाणों के बावजूद भी यदि कोई ऐसा स्वप्न देखे कि अन्यान्य सारे धर्म नष्ट हो जायेंगे और केवल उसका धर्म ही जीवित रहेगा, तो उसपर मैं अपने हृदय के अन्तस्तल से दया करता हूँ और उसे स्पष्ट बतलाए देता हूँ कि शीघ्र ही सारे प्रतिरोधों के बावजूद, प्रत्येक धर्म की पताका पर यह लिखा रहेगा—'सहायता करो, लड़ो मत।' 'पर-भाव-ग्रहण न कि परभाव विनाश;' 'समन्वय और शांति, न कि मतभेद और कलह!'

शिकागो विश्व धर्म-महासभा

—श्रीमत् स्वामी रंगनाथानन्द
परम उपाध्यक्ष,
रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन

[लेखक की प्रख्यात पुस्तक 'इटरनल वेल्यूज फॉर ए चेंजिग सोसाइटी' में संकलित इण्डियाज एमिसरी टु दि वेस्ट' के अंश का अनुवाद। अनुवादक: डॉ० केदारनाथ लाभ।]

'कोलम्बियन एक्सपोजिशन' (कोलम्बियन प्रदर्शनी) के अंग के रूप में विश्व धर्म-सभा का आयोजन विश्व के इतिहास में महत्तम घटनाओं में से एक था। यह आयोजन अन्तर धार्मिक सम्बन्धों के इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण मील का पत्थर था। यह हिन्दू धर्म के हजारों वर्षों के इतिहास में एक नये युग का संकेत भी था। काल के अन्तराल के साथ ही इसका पूर्ण महत्त्व उद्घाटित होगा। संसार के विभिन्न भागों से असमान ढंगों के संगठित धार्मिक विश्वासों का प्रतिनिधित्व करनेवाले प्रतिनिधिगण इसमें भाग लेने आये थे। इस धर्म सभा ने मानवता की धार्मिक दृष्टि को एकीकृत करने, धर्मों के प्रति दृष्टिकोण को व्यापक बनाने तथा उनमें आपसी संवाद करने के युग की शुरुआत करने में मदद की। इन धर्मों ने उस समय तक अधिकांशतः अलगाव या गलत फहमियों में कार्य किया था। और इस सभा ने कुछ और अधिक कार्य किया; इसने पश्चिमी जगत को पूर्वी जगत, विशेषकर भारत की समृद्ध आध्यात्मिक सम्पदा की अभिज्ञता प्रदान की। इस महासभा की विज्ञान शाखा के अध्यक्ष, श्रीयुत मर्विन-मेरी स्नेल ने लिखा है (द लाइफ ऑफ स्वामी विवेकानन्द, पृ० ३०० में उद्धृत)—"इसकी सबसे बड़ी देन तो यह है कि इसने ईसाई समुदाय को और विशेषकर अमेरिकी जनता को यह अमूल्य शिक्षा दी है कि ईसाई धर्म की तुलना में उससे भी अधिक सम्माननीय और भी अनेक धर्म हैं जो दार्शनिक चिन्तन की गहनता, आध्यात्मिक भावसम्पदा, स्वाधीन विचारधारा के तेज और मानवीय सहानुभूति के विस्तार में ईसाई धर्म को भी पीछे छोड़ जाते हैं, पर साथ ही नैतिक सौन्दर्य तथा कार्यकुशलता की दृष्टि से उससे विन्दु मात्र भी न्यून नहीं हैं। हिन्दू, जैन, बौद्ध, यहूदी, कन्फ्यूशियन, शिन्तो, इस्लाम और पारसी—ये आठ गैर ईसाई धर्म महासभा की चर्चाओं में उपस्थित थे।"

यह महासभा संसार के कुछ अत्यन्त प्रतिष्ठित मान्य व्यक्तियों का संगम थी। एक विशाल जनसमूह ने, जिसकी संख्या सात से दस हजार तक थी, इस महासभा के सत्रों में भाग लिया। इनमें विश्व के महान दार्शनिक भी सम्मिलित थे। विभिन्न प्रतिनिधियों द्वारा एक हजार से अधिक निबन्ध पढ़े गये। वैज्ञानिक-विभाग के साथ ही इसमें अनेक विभाग थे।

धर्म महासभा में विवेकानन्द

एक प्रसिद्ध अमरीकी लेखक धर्म महासभा और स्वामी विवेकानन्द का उल्लेख करते हुए कहते हैं ('द लाइफ ऑफ स्वामी विवेकान्द' पृ० ३०९ में उद्धृत)!

'१८९३ ई० में शिकागो में आयोजित विश्व

कोलम्बियन एक्सपोजिशन (प्रदर्शनी) से सम्बद्ध धर्म महासभा के अधिवेशन के पूर्व इस देश में विवेकानन्द के बारे में बहुत कम जानकारी थी। फिर भी, उस शुभ अवसर पर वे अपनी पूर्ण राजसी भव्यता में उपस्थित हुए। ११ सितम्बर, १८९३ ई० को सोमवार के दिन प्रातः १० बजे शिकागो के आर्ट इन्स्टीट्यूट में डॉ० बैरोजने उद्‌घाटन भाषण दिया था। उनके निम्नोक्त कुछ शब्द हैं :

'चूँकि जिनको सेवा और उपासना करने के दाय में लोग विश्वास करते हैं, उन दैवी शक्ति में श्रद्धा सूर्य की भाँति, मनुष्य के बौद्धिक और नैतिक विकास में जीवनदायी और फलदायी शक्ति रही है; चूँकि धर्म अपने आश्चर्यजनक और गुह्य विकासों के साथ हिन्दू वाङ्मय की रीढ़ में स्थित है, अतः ऐसा नहीं लगा कि कोलम्बियन एक्सपोजिशन से अब धर्म को शिक्षा, कला या विद्युत से और अधिक विलग रखना चाहिए।'

'सोमवार के उस स्मरणीय प्रभात में विशाल हॉल ऑफ कोलम्बस के मंच पर एक सौ बीस करोड़ मनुष्यों की धार्मिक आशाओं और विश्वासों के प्रतिनिधिगण विराजमान थे। वस्तुतः यह सब बड़ा प्रभावशाली था। पश्चिमी महाद्वीप पर रोमन कैथोलिक चर्च के उच्चतम धर्माधिकारी कार्डिनल गिब्बन्स लौह सिंहासन पर बैठे थे। उन्होंने ईश्वर की स्तुति के साथ सभा का उद्‌घाटन किया। उनके दायें और बायें पूर्वी देशों के प्रतिनिधिगण समुपस्थित थे। उनके चमकीले वस्त्र स्वयं श्री गिब्बन्स की चमकीली लाल रंग की पोशाक से होड़कर रही थी। ब्रह्म, बुद्ध, और मुहम्मद के अनुयायियों के बीच विवेकानन्द नामक एक विशिष्ट भावपूर्ण भारतीय संन्यासी बैठे थे। वे शानदार लाल पोशाक (गैरिक वस्त्र) में सुशोभित थे तथा लम्बा गेरुआ मरेठा बांधे थे। उनकी अनोखी सुन्दर देहाकृति और ताम्रवर्णी रूप उस विशाल भीड़ में अलग से ही विशिष्ट लग रहे थे। उनकी बगल में ब्रह्मसमाज के नागरकर, हिन्दू आस्तिकों के प्रतिनिधि बैठे थे। फिर लंका के बौद्ध प्रतिनिधि धर्मपाल थे; फिर भारत के आस्तिकों के नेता आये। विश्व के श्रेष्ठतम चुने हुए धर्मतत्वज्ञों में से इन्हें और अन्य अनेक को, जिनके नाम कमोबेश परिचित हैं, स्थानाभाव में छोड़ ही दिये जाने चाहिए। हमारा विषय जिससे घिरा हुआ था उसकी सज्जा दिखाने के लिए यह पर्याप्त होगा। "भारत के विद्वत्तापूर्ण विचारों के सम्पर्क में आकर हमलोग प्राची के प्रति नयी श्रद्धा से अनुप्राणित हो उठे हैं।" संख्या क्रम के अनुसार विवेकानन्द की कुर्सी की संख्या इकतीस थी।

'अमेरिकावासी बहनो और भाइयो'

उद्‌घाटन के दिन अध्यक्ष ने कई बार स्वामी विवेकानन्द को वक्तृता देने के लिए पुकारा था, किन्तु उन्होंने तब तक, 'नहीं, अभी नहीं', कहा था जब तक अध्यक्ष किंकर्तव्यविमूढ़ और आश्चर्य चकित न हो गये थे कि वे बोलेंगे भी या नहीं। अन्ततोगत्वा देर अपराह्न में, जब अध्यक्ष ने जोर दिया, तब स्वामीजी उठे और अपने आगे उपस्थित विशाल जन समुदाय का एक दृष्टि डालकर सर्वेक्षण किया। समस्त श्रोतागण एकाग्र हो गये; वहाँ पूर्ण नीरवता छा गयी। ज्ञान की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती को नमन् कर उन्होंने अपने श्रोताओं को "अमेरिकावासी बहनों और भाइयों" कहकर सम्बोधित किया। जब तक वे दूसरा शब्द बोलते उसके पहले ही सारी धर्म-महासभा उमग की विशाल लहर में डूब गयी थी और सैकड़ों व्यक्ति तालियों की गड़गड़ाहट करते हुए अपने पाँवों पर खड़े हो गये। पूरे दो मिनटों तक केवल जयध्वनि, जयध्वनि, जयध्वनि होती रही। स्वामीजी हक्के-बक्के हो गये थे।

जब नीरवता लौटी, स्वामीजी ने स्वागत के शब्दों का उत्तर देते हुए, राष्ट्रों में कनिष्ठतम, अर्थात् अमेरिका को ससार में संन्यासियों की सबसे प्राचीन परम्परा यानी संन्यासियों की वैदिक परम्परा की ओर से धन्यवाद देते हुए अपना व्याख्यान जारी रखा। उन्होंने हिन्दुत्व का परिचय 'धर्मों की माता' के रूप में दिया, जिसने संसार को सहिष्णुता और सार्वभौमिक स्वीकृति, दोनों, की सीख दी है। हिन्दुओं द्वारा ईसा की पहली शताब्दी में यहूदी शरणार्थियों और आठवीं शताब्दी में पारसी शरणार्थियों का स्वागत और सुरक्षा प्रदान किये जाने का उल्लेख करते हुए उन्होंने अपने कथन को सोदाहरण पुष्ट किया। और हिन्दू शास्त्रों से दो निदर्शनकारी अवतरणों को उद्धृत करते हुए उन्होंने अपने व्याख्यान का समापन किया—'जैसे विभिन्न नदियाँ भिन्न-भिन्न स्रोतों से निकलकर समुद्र में मिल जाती हैं, उसी प्रकार हे प्रभो! भिन्न-भिन्न रुचि के अनुसार विभिन्न टेढ़े-मेढ़े अथवा सीधे रास्ते से जानेवाले लोग अन्त में तुझमें ही आकर मिल जाते हैं।' 'जो कोई मेरी ओर आता है—चाहे किसी प्रकार से हो—मैं उसको प्राप्त होता हूँ। लोग भिन्न-भिन्न मार्ग द्वारा प्रयत्न करते हुए अन्त में मेरी ही ओर आते हैं।'

यह संक्षिप्त किन्तु भावप्रवण व्याख्यान था। इस व्याख्यान की विश्वजनीनता, गाम्भीर्य, और दृष्टिकोण की व्यापकता के भाव ने सारे जनसमूह को पूर्णतः विमोहित कर दिया। उन्होंने महासभा की औपचारिकता को हटा दिया और समुपस्थित लोगों से हृदय की भाषा में बात की। पाँच शब्दों के जिस मुहावरे का उन्होंने आरम्भ में उच्चारण किया; 'अमेरिका निवासी बहनों और भाइयों' वह अग्निशिखा की भाषा था जिसने उसके श्रोताओं के हृदय को प्रज्वलित कर दिया। प्रत्येक वक्ता ने 'अपने ईश्वर', 'अपने सम्प्रदाय के ईश्वर' की बात कही थी। एकमात्र वे ही 'सबके ईश्वरों की ओर से बोले और उन्होंने ही विश्व मानव के रूप में सबको गले लगाया। यह श्रीरामकृष्ण का भाव था जो उनके महान शिष्य की वाणी के द्वारा विभिन्न धर्मों के बीच की दीवार को ढाहकर व्यक्त हुआ था।

उक्त धर्म-महासभा ने उस अपराह्न में उनका प्रचण्ड जयजयकार किया और समाचारपत्रों के मोटे-मोटे शीर्षकों के द्वारा धर्म महासभा में उनकी देन का समाचार पाकर अमरीकी राष्ट्र ने दूसरे दिन अपना मौन साधुवाद अर्पित किया।

अनुवर्ती सत्रों में १५ सितम्बर को वे 'हमारे मतभेद का कारण' विषय पर बोले, जिसमें उन्होंने धर्मों की संकीर्णता की भर्त्सना की और 'कुएँ का मेढ़क' नामक चित्रात्मक कहानी सुनायी। १७ सितम्बर को 'हिन्दू धर्म' पर प्रख्यात निबन्ध का पाठ किया। २० सितम्बर को "धर्म : भारत की प्रधान आवश्यकता नहीं" विषय पर व्याख्यान दिया, जिसमें उन्होंने ईसाई राष्ट्रों को अपने धन का अपव्यय मूर्त्तिपूजकों की आत्मा का उद्धार करने के निमित्त न कर उनके क्षुधातुर शरीर की रक्षा करने के निमित्त धन लगाने का उपदेश दिया। २२ सितम्बर को 'कट्टर हिन्दू धर्म और वेदान्त दर्शन', २५ सितम्बर को 'हिन्दू धर्म का सार' २६ सितम्बर को 'बौद्ध धर्म : हिन्दू धर्म की निष्पत्ति' विषय पर और २७ सितम्बर को उन्होंने अन्तिम अधिवेशन में भाषण दिये। इनके अतिरिक्त उन्होंने वैज्ञानिक प्रभाग में भाषण दिया तथा चार अन्य व्याख्यान दिये।

विवेकानन्द के शब्दों का संगीत और सम्मोहन

'हिन्दू धर्म' पर उनका निबन्ध समस्त व्यापकताओं के साथ जटिलतापूर्ण हिन्दूधर्म की एक अत्यन्त उत्कृष्ट परिभाषा है। भगिनी निवेदिता द्वारा 'विवेकानन्द साहित्य' के प्रथम

खण्ड की उनकी भूमिका (पृ० ञ—) में इस व्याख्यान के मुख्य आशय का ग्रहण अन्तर्दृष्टि के साथ वर्णन किया गया है -

'विश्व-धर्म महासभा के सम्मुख स्वामीजी के अभिभाषण के सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है है कि जब उन्होंने अपना भाषण आरम्भ किया, तो विषय था, 'हिन्दुओं के धार्मिक विचार', किन्तु जब उन्होंने अन्त किया, तब तक हिन्दू धर्म की सृष्टि हो चुकी थी।......

'स्वामी विवेकानन्द के अधरों से जो शब्द उच्चरित हुए, वे स्वयं उनके अनुभवजनित नहीं थे। न उन्होंने अपने गुरुदेव की कथा सुनाने के निमित्त ही इस अवसर का उपयोग किया। इन दोनों के स्थान पर, भारत की धार्मिक चेतना—सम्पूर्ण अतीत द्वारा निर्धारित उनके समग्र देशवासियों का सन्देश ही उनके माध्यम से मुखर हुआ था। और जब वे पश्चिम के यौवन और मध्याह्न में बोल रहे थे, तब प्रशान्त के दूसरी ओर, तमसाच्छन्न गोलार्ध की छायाओं में प्रसुप्त एक राष्ट्र अपनी ओर गतिमान अरुणोदय के पंखों पर आनेवाली और उसके प्रति स्वयं उसके ही महत्त्व और शक्ति का रहस्य उद्घाटित करनेवाली वाणी की प्रतीक्षा अपनी आत्मा में कर रहा था।

'उसी धर्म-महासभा के मंच पर स्वामी विवेकानन्द के अतिरिक्त विशिष्ट मतों और संघों के धर्मदूत भी उपस्थित थे। किन्तु एक ऐसे धर्म का प्रचार करने का गौरव उन्हीं को था, जिस तक पहुँचने के लिए इनमें से प्रत्येक, उन्हीं के शब्दों में विविध अवस्थाओं और परिस्थितियों के द्वारा उसी एक लक्ष्य तक पहुंचने के निमित्त 'विभिन्न स्त्री-पुरुषों की यात्रा, प्रगति मात्र है।' और जैसा कि उन्होंने घोषित किया, वे वहां एक ऐसे महापुरुष का परिचय देने के लिए खड़े हुए थ, जिसने इन सभी मत-मतान्तरों के विषय में कहा है कि ऐसा नहीं है कि इनमें से कोई एक या दूसरा, इस या उस पक्ष में, इस या उस कारण, सत्य या असत्य है, वरन् "मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव"—'यह सब सूत्र में मोतियों की भांति मुझमें ही पुहे हुए हैं।' 'जहां मानव जाति को पवित्र और उसका उन्नयन करती असामान्य पवित्रता, असामान्य शक्ति, तेरे देखने में आये, तू जान कि मैं वहां हूं।' विवेकानन्द का कहना है कि एक हिन्दू की दृष्टि में 'मनुष्य भ्रम से सत्य की ओर नहीं जाता, वरन् सत्य से सत्य की ओर अग्रसर होता है; निम्नतर सत्य से उच्चतर सत्य की ओर जाता है।' यह तथा मुक्ति का यह सिद्धान्त कि 'मनुष्य को ईश्वर का साक्षात्कार करके ईश्वर होना है', यह सत्य कि धर्म केवल तभी हममें पूर्णता को प्राप्त करता है, जब वह हमें 'उस तक ले जाता है, जो मृत्यु के संसार में एकमात्र जीवन है, उस तक जो नित्य परिवर्तनशील जगत का चिरन्तन आधार है, उस एक तक ले जाता है, जो केवल आत्मा ही है, अन्य सभी आत्माएँ जिसकी भ्रान्त अभिव्यक्तियां मात्र हैं'—ये दो महान् विशिष्ट सत्यों के रूप में मान्य हो सकते हैं। भारत ने मानव-इतिहास की दीर्घतम और जटिलतम अनुभूति के द्वारा प्रमाणीकृत इन दोनों सत्यों को उनके माध्यम से पश्चिम के आधुनिक जगत् में घोषित किया।

'स्वयं भारत के लिए जैसा पहले ही कहा जा चुका है, यह संक्षिप्त अभिभाषण मताधिकार की एक छोटी-सी सनद थी। वक्ता ने हिन्दू धर्म को सर्वांगतया वेदों पर आधारित किया है; किन्तु वेद सम्बन्धी हमारी धारणा का वे इस शब्दके उच्चारण मात्र से ही आध्यात्मीकरण कर देते हैं। उनके निकट, जो कुछ सत्य है, वह सब वेद है। वे कहते हैं, 'वेदों का अर्थ कोई ग्रन्थ नहीं है। वेदों का अर्थ, है, विविध समयों पर विभिन्न व्यक्तियों द्वारा

आविष्कृत आध्यात्मिक नियमों का संचित कोष।' प्रसंगवश वे सनातन धर्म के सम्बन्ध में अपने विचार को भी प्रकट करते हैं ......। उनकी दृष्टि में भारतवासियों का कोई भी मत सम्प्रदाय अथवा कोई भी सच्ची अनुभूति —वह किसी को कितनी ही धूमिल क्यों न प्रतीत हो— ऐसी नहीं है, जिसे हिन्दू धर्म की बाहुओं से औचित्यपूर्वक बहिष्कृत किया जा सके। और उनके अनुसार इस भारतीय धर्ममाता का विशिष्ट सिद्धान्त है इष्ट देवता - हर आत्मा को अपने मार्ग को चुनने तथा ईश्वर को अपने ढंग से खोजने का अधिकार।......

'किन्तु सबों का यह समावेश, प्रत्येक की यह स्वतंत्रता हिन्दू धर्म की ऐसी गरिमा न बन पाती, यदि उसका परम आह्वान और उसकी मधुरतम प्रतिज्ञा यह न होती: 'हे अमृतपुत्रो ! सुनो ! उच्चतर लोकों में रहनेवालो, तुम भी सुनो : मैंने उस पुराण पुरुष को पा लिया है, जो समस्त अंधकार, समस्त भ्रान्ति के परे है। और तुम भी उसको जानकर मृत्यु से मुक्ति प्राप्त कर सकोगे।' यही है वह शब्द, जिसके निमित्त शेष सबका अस्तित्व है और रहा है। इसी में वह चरम अनुभूति है, जिसमें अन्य सबका तिरोभाव हो जाता है।"

अन्त में उन्होंने ऐहिक, स्थानिक या साम्प्रदायिक सीमाओं से रहित अपने सार्वजनीन धर्म विषयक विचारों को प्रस्तुत किया और घोषणा की :

'आप ऐसा ही धर्म सामने रखिए, और सारे राष्ट्र अनुयायी बन जायेंगे। सम्राट अशोक की परिषद् बौद्ध परिषद् थी। अकबर की परिषद् अधिक उपयुक्त होती हुई भी, केवल बैठक की ही गोष्ठी थी। किन्तु पृथ्वी के कोने-कोने में यह घोषणा करने का गौरव अमेरिका के लिए ही सुरक्षित था कि 'प्रत्येक धर्म में ईश्वर है।"

'यह जो हिन्दुओं का ब्रह्म, पारसियों का अहुरमज्द, बौद्धों का बुद्ध, यहूदियों का जिहोवा और ईसाइयों का स्वर्गस्थ पिता है, आपको अपने उदार उद्देश्य को कार्यान्वित करने की शक्ति प्रदान करे ! नक्षत्र पूर्व गगन में उदित हुआ और कभी धुंधला और कभी देदीप्यमान होते धीरे-धीरे पश्चिम की ओर यात्रा करते-करते उसने समस्त जगत् की परिक्रमा कर डाली और अब वह फिर प्राची के क्षितिज में सहस्र गुनी अधिक ज्योति के साथ उदित हो रहा है !

'ऐ स्वाधीनता की मातृभूमि कोलम्बिया[1], तू धन्य है ! यह तेरा ही सौभाग्य है कि तूने अपने पड़ोसियों के रक्त से अपने हाथ कभी नहीं भिगोये, तूने अपने पड़ोसियों का सर्वस्व हरण कर सहज में ही धनी होने की चेष्टा नहीं की, अतएव समन्वय की ध्वजा फहराते हुए सभ्यता की अग्रणी होकर चलने का सौभाग्य तेरा ही था।'

और अन्तिम अधिवेशन के अपने भाषण में स्वामीजी ज्योतिर्मय उच्चता में प्रतिष्ठित हुए तथा महासभा की उपलब्धियों की विशिष्टता बताते हुए उन्होंने आशा के ये भविष्य सूचक शब्द कहे :

'इस धर्म-महासभा ने जगत् के समक्ष यदि कुछ प्रदर्शित किया है, तो वह यह है : उसने यह सिद्ध कर दिया है कि शुद्धता, पवित्रता और दयाशीलता किसी सम्प्रदाय विशेष की ऐकान्तिक सम्पत्ति नहीं है, एवं प्रत्येक धर्म ने श्रेष्ठ एवं अतिशय उन्नत चरित्र स्त्री-पुरुषों को जन्म दिया है। अब इन प्रत्यक्ष प्रमाणों के बावजूद भी यदि कोई ऐसा स्वप्न देखे कि अन्यान्य सारे धर्म नष्ट हो जायंगे और केवल उसका धर्म ही जीवित रहेगा, तो उस पर मैं अपने हृदय के अन्तस्तल से दया

---

१. अमेरिका का दूसरा नाम।

करता हूँ और उसे स्पष्ट बतलाये देता हूँ कि शीघ्र ही सारे प्रतिरोधों के बावजूद, प्रत्येक धर्म की पताका पर यह लिखा रहेगा—'सहायता करो, लड़ो मत।' 'पर—भाव—ग्रहण, न कि परभाव—विनाश'; 'समन्वय और शान्ति, न कि मतभेद और कलह !'

'उनके शब्द महान् संगीत हैं'—विवेकानन्द की वाणियों के सम्बन्ध में रोमां-रोलां का कथन है, (लाइफ ऑफ विवेकानन्द पृ० १४६) विवेकानन्द ने उस धुन—एकता और समन्वय की धुन, प्रेम और शान्ति की धुन, मनुष्य के हृदय में देवत्व की धुन—को संगीत प्रदान किया जो आधुनिक विश्व के लाखों व्यक्तियों के मन में उमड़-घुमड़ रही थी।

जाग्रत हो नयी चेतना

—स्वामी निखिलेश्वरानन्द
रामकृष्ण आश्रम, राजकोट

[शिकागो विश्वधर्म-महासभा में स्वामी विवेकानन्द के योगदान की शतवार्षिकी के अवसर पर भारत सरकार ने १९९३ ई० को भारत में 'चेतना-वर्ष' के रूप में मनाने का संकल्प लिया है। इसी सन्दर्भ में स्वामी निखिलेश्वरानन्द जी महाराज ने प्रस्तुत निबन्ध लिखा है जो प्रासंगिक और प्रेरक है।—सं०]

भारतमाता के अंतिम छोर पर तीन सागरों से घिरे उस सुन्दर स्थान में जहाँ माता कन्याकुमारी का अनुपम मन्दिर है, एक संन्यासी समस्त भारत का परिभ्रमण समाप्त कर आया और एक छोटे शिशु की भाँति माता के विग्रह के सामने लोट-पोट होने लगा। मानो उसके जोवन की साध पूरी हुई। माता की पूजा समाप्त कर वह मन्दिर के बाहर आया। विचारो में खोया हुआ वह समुद्र के किनारे खड़ा था कि उसकी दृष्टि जल में कुछ दूर पर स्थित एक शिलाखंड पर पड़ी। वह जान की परवाह किये बिना समुद्र में कूद पड़ा और तैरकर उस चट्टान पर जा पहुँचा और गहरे ध्यान में निमग्न हो गया। किन्तु यह कोई साधारण देवी-देवता पर का ध्यान नहीं था। यह ध्यान था भारत-माता का। भारत का गौरवमय अतीत, भारत का अंधकारमय वर्तमान और भारत के सुनहरे भविष्य के विचारों में वह डूब गया। भारत की आम जनता की गरीबी, दुर्दशा, नारियों पर के अत्याचार, धर्म के नाम पर पाखण्ड आदि को जो उसने अपनी सगी आँखों से देखा वह सब उसके मानसपटल पर बरबस आ गया। भारत के उस अंतिम शिलाखंड पर बैठे हुए इस एकाकी युवा संन्यासी का हृदय भारत के तिरस्कृत और पद-दलित लोगों की आहों से व्यथित हो उठा। उसकी हृतन्त्री के तार भारत की नंगी, भूखी अशिक्षित जनता की बेवसी के रागों में बँधे हुए थे। देश में चारों ओर व्याप्त दरिद्रता का नग्न आर्तनाद उन तारों को झनझना देता और उसे प्रतीत होता मानो कोई उसके हृदय को निचोड़े डाल रहा है। इस शिलाखंड पर बैठकर एक सन्त एक महान देशभक्त के रूप में परिणत हो अपनी मुक्ति के लिए लालायित संन्यासी 'बहुजन हिताय बहुजन सुखाय' समस्त-संसार के कल्याण में निमग्न महामानव में परिवर्तित हो गया। आज समस्त विश्व उसको

स्वामी विवेकानन्द के नाम से अभ्यर्थना करता है ।

इस समय की अपनी मानसिक स्थिति का वर्णन करते हुए स्वामी विवेकानन्द ने बाद में अपने एक पत्र में लिखा था: "इन सब विचारों ने, और विशेषकर देश की गरीबी और अज्ञानता के विचारों ने मेरी नींद हर ली । कन्याकुमारी में, माता के मन्दिर में बैठे हुए मुझे एक उपाय सूझ पड़ा -"अच्छा, हम लोग इतने संन्यासी हैं, इधर-उधर घूमते रहते हैं, लोगों को दर्शन और ज्ञान की शिक्षा देते फिरते हैं—यह सब पागलपन है । क्या हमारे गुरुदेव (श्रीरामकृष्ण) यह नहीं कहा करते थे कि 'भूखे भजन न होइ गोपाला' ? ये बेचारे गरीब केवल अज्ञान के कारण पशुओं का-सा जीवन बिता रहे हैं । हम युगों से उनका रक्त चूसते रहे हैं, उन्हें पैरों तले रौंदते रहे हैं । हम एक राष्ट्र के रूप में अपना व्यक्तित्व खो चुके हैं और यही भारत की सारी गड़बड़ी का कारण है । हमें राष्ट्र को इसका खोया हुआ व्यक्तित्व पुनः प्रदान करना है और जनसमुदाय को ऊपर उठाना है ।"

भारतीय राष्ट्रीय चेतना के इतिहास में कन्याकुमारी का यह शिलाखंड जिस पर बैठकर स्वामी जी ने ठीक सौ वर्ष पूर्व ध्यान किया था, अपना विशिष्ट स्थान रखता है । यहीं पर स्वामीजी समुद्र पार कर विदेश में जाकर भारतीय संस्कृति और आध्यात्मिक ज्ञान के विनिमय द्वारा अपने देशवासियों के लिए वहाँ का धन और तकनीक लाने की योजना बनाते हैं । युगों से प्रगाढ़ निद्रा में निमग्न भारत की राष्ट्रीय चेतना स्वामी विवेकानन्द के अनन्त विस्तारित, संवेदनाशील हृदय में एक बार फिर से जाग उठती है । भारत के भाग्य जाग उठते हैं । आत्मदृष्टा विवेकानन्द युग-दृष्टा, राष्ट्र-दृष्टा आचार्य हो जाते हैं । इसी समय से उनका जीवन सर्वतोभवेन भारत की सेवा में समर्पित हो जाता है और यहां के 'अछूत-नारायण', 'दरिद्र नारायण', उत्पीड़ित और दलित नारायण स्वामी जी के विशेष सेव्य हो जाते हैं । यहाँ पर स्वामीजी अपने ही शब्दों में Condensed India (घनीभूत भारत) हो जाते हैं । ध्यान की उस प्रगाढ़ तन्मयावस्था में स्वामीजी भारत के लिए उस शक्ति के अनन्त स्रोत का द्वार उद्घाटित कर देते हैं, जिसके बल पर भारत पुनः सच्चे अर्थों में विश्व का पथ-प्रदर्शक होनेवाला है ।

स्वामीजी की भारत-परिक्रमा एवं शिकागो धर्म महासभा में उनकी सहभागिता—इन दोनों शताब्दी समारोहों के इस मिलन वर्ष को भारत सरकार ने चेतना वर्ष के रूप में मनाने का निश्चय किया है, यह एक अत्यन्त सराहनीय कदम है । इस उपलक्ष में रामकृष्ण मठ एवं मिशन द्वारा भी इन दोनों शताब्दियों को मनाने की योजना बड़े पैमाने पर की जा रही है । इस हेतु रामकृष्ण मिशन के मुख्यालय में एक केन्द्रीय समिति का गठन किया गया है जिसके संयोजक स्वामी लोकेश्वरानन्द हैं ।

इस अवसर पर सितम्बर में कलकत्ता में एक धर्मसभा का आयोजन हुआ है जिसमें विश्व के सुप्रसिद्ध विद्वान भाग लेंगे । रामकृष्ण मठ तथा मिशन के शाखा केन्द्रों, अनौपचारिक केन्द्रों द्वारा विभिन्न प्रकार के कार्यक्रमों का आयोजन किया जा रहा है—विभिन्न भाषाओं में स्मारिकाओं, पुस्तकों, ऑडियो एवं विडियो कैसेटों का प्रकाशन, आम सभाओं का आयोजन, वाद-विवाद सभा, निबन्ध प्रतियोगिता, प्रश्नोत्तर प्रतियोगिता शोभा-यात्रा, प्रदर्शनी इत्यादि का आयोजन ।

आज स्वामी विवेकानन्द का सन्देश जितना प्रासंगिक है, उतना शायद कभी नहीं था । देश की वर्तमान परिस्थिति के सन्दर्भ में यह अति आवश्यक है कि उनके सन्देश का प्रचार-प्रसार बड़े पैमाने पर हो । विद्यालयों-महाविद्ययों, फैक्ट्रियों ऑफिसों

आदि सभी स्थानों पर स्वामी विवेकानन्दजी के अमर सन्देश को फैलाने का समय आ गया है। जैसे-जैसे उनका सन्देश प्रसारित होगा, रोमारोलां की भाषा में एक विद्युत का झटका (Electric Shock) लोगों को लगेगा। एक नयी चेतना जागृत होगी।

प्रभु के चरणों में यही प्रार्थना है कि यह चेतना-वर्ष सच्चे अर्थों में देश में नयी चेतना की जागृति लाये।

---

११ सितम्बर ९३ : स्वामी विवेकानन्द के शिकागो, सम्बोधन की शताब्दी के अवसर पर

शिकागो सम्बोधन : विश्व एकत्व का उद्बोधन

—मोहन सिंह मनराल, सुरइखेत
अल्मोड़ा (उ० प्र०)

अपनी मातृभूमि भारत को पराधीनता शोषण व दीनता के चंगुल में छटपटाता देख अपने भारत भ्रमण के अन्तिम दौर में स्वामी विवेकानन्द का वैराग्य व स्वमुक्ति की इच्छा न जाने कहाँ लुप्त हो गयी! कन्याकुमारी के देवी-मन्दिर में वे कह उठे, "माँ! मैं मुक्ति नहीं चाहता। तुम्हारी सेवा ही मेरे जीवन का एकमात्र व्रत है।" इस महाव्रत को धारण कर अपनी प्रिय मातृभूमि की दीन-हीन दशा के प्रतिकार की पीड़ा लेकर स्वामीजी ३१ मई, १८९३ को पश्चिमी देशों की यात्रा पर निकल पड़े। ११ सितम्बर, १८९३ को उन्होंने धर्म महा-सभा के मंच से संसार में सहिष्णुता व सार्वभौमिक स्वीकृति की शिक्षा देने वाले सनातन हिन्दू धर्म को समस्त धर्मों की जननी के रूप में प्रमाणित किया। जिस धर्म सभा का आयोजन किसी एक धर्म की श्रेष्ठता सिद्ध करने हेतु किया गया था उसे समस्त मानवता के लिए विश्व एकत्व के उद्बोधन का मंच बनाकर विवेकानन्द ने भारत के प्रति पश्चिमी देशों को अपना दृष्टिकोण बदलने के लिये मजबूर कर दिया। जैसा कि अमेरिका के सबसे बड़े समाचार पत्र 'हेराल्ड' ने लिखा, "विवेकानन्द निश्चय ही धर्म महासभा के महानतम व्यक्ति हैं। उनके व्याख्यान सुनने के बाद हमारी समझ में आ जाता है कि उस ज्ञानी राष्ट्र में धर्म प्रचारक भेजना कैसी मूर्खता है।"

प्राच्य व पाश्चात्य के मध्य सेतु विवेकानन्द :—

अमेरिकी समाज पर अपने व्यापक प्रभाव को स्वयं स्वीकार करते हुए स्वामी जी ने अपने एक मद्रासी शिष्य आलासिंगा को पत्र में लिखा था 'तुम्हारे लिए इतना ही जान लेना यथेष्ट होगा कि इसके पूर्व कभी भी प्राच्य व्यक्ति ने अमेरिकी समाज पर इतना गहरा प्रभाव नहीं डाला।' आज भारत व समस्त विश्व में उस महान घटना की स्मृति को पुनः जाग्रत करने और मूल्यांकित करने हेतु समारोह आयोजित किये जा रहे हैं जब प्राच्य व पाश्चात्य के मध्य सेतु विवेकानन्द ने धर्म व विज्ञान के सम्मिलन से एक नयी विश्व-संस्कृति को जन्म दिया था व अमेरिका के शिकागोनगर में आज से ठीक एक सौ वर्ष पूर्व हजारों नर-नारियों ने उस घड़ी को देखा व सुना था जब इतिहास करवट बदल रहा था।

अपने ऐतिहासिक व्याख्यान की प्रथम व अन्तिम पंक्ति में स्वामी जी ने पूर्व व पश्चिम को एक सूत्र में पिरोते हुए अपने महान कार्य का श्रीगणेश किया था। प्रथम पंक्ति में वे समस्त मानव जाति को 'बहनो और भाइयो' के सम्बोधन से पूर्व के भ्रातृत्वभाव का उद्घाटन करते हैं जिसके प्रभाव से सात हजार श्रोता सम्मोहित हो दो मिनट तक यंत्रवत तालियां पीटते रहे। अपने इस संक्षिप्त व्याख्यान की अन्तिम पंक्ति में उन्होंने कहा,— 'आज सुबह इस सभा के सम्मान में जो घंटा ध्वनि हुई है, वह समस्त धर्मान्धता का, तलवार या लेखनी के द्वारा होनेवाले सभी उत्पीड़नों का, तथा एक ही लक्ष्य की ओर अग्रसर होने वाले मानवों की पारस्परिक कटुताओं का मृत्यु-निनाद सिद्ध हो। इस वाक्य में उस एकत्व का बीज समाया था जिसे वेदान्त के रूप में उन्होंने पश्चिम की धरती पर बोया और 'सर्वधर्म समन्वय' तथा 'जितने मत उतने पथ' के रूप में अपने गुरुदेव श्रीरामकृष्ण परमहंस से पाया था। अपने गुरुदेव के जिस महान संदेश को लेकर वे पश्चिम की धरती पर गये उसके बारे में न्यूयार्क में 'मेरे गुरुदेव' शीर्षक से व्याख्यान देते हुए उन्होंने कहा, "आधुनिक संसार के लिए श्रीरामकृष्ण का संदेश यही है—मतवादों, आचारों, पंथों तथा गिरजाघरों एवं मन्दिरों की चिन्ता न करो। प्रत्येक मनुष्य के भीतर जो सार वस्तु अर्थात् आत्मतत्व विद्यमान है, उसकी तुलना में ये सब तुच्छ हैं। प्रथम इसी धर्म-धन का उपार्जन करो, किसी के दोष मत ढूँढ़ो क्योंकि सभी मत, सभी पथ अच्छे हैं।...अत: प्रथम स्वयं धार्मिक बनो और सत्य की उपलब्धि करो।"

(वि० सा० खण्ड—७ पृष्ठ २६७)

स्वामीजी द्वारा प्रसारित यह संदेश आज भारत व समस्त विश्व की वर्तमान अवस्था के लिए किस प्रकार प्रासंगिक है यह अलग से विचारणीय प्रश्न है जिसका निदान इससे भिन्न कुछ भी नजर नहीं आता। भारतीय संस्कृति के अमूल्य रत्नों, वेद पुराण की खान को नव वेदान्त के रूप में सहज और सुपाच्य बनाकर रजोगुण के शीर्ष पर खड़े पश्चिमी भौतिकवादी समाज की झोली में मानव मुक्ति की मुक्ता डालते हुए स्वामीजी ने कहा, "उठो, अपने को मुक्त करो, समस्त नियमों के राज्य से बाहर चले जाओ...तुम ज्योति स्वरूप हो, तुम पहले से ही सिद्ध हो। 'जो यहां नानात्व देखता है, वह बारम्बार मृत्यु को प्राप्त होता है।" उस एक को देखो और मुक्त हो जाओ।'

(वि० सा० ख० २, पृ० १४०)

मानव मुक्ति के साथ अन्तर्राष्ट्रीयता का उदय:—

वेदान्त के इस आत्मबोध ने जिस एकत्व को उद्घाटित किया आगे चलकर उसने विभिन्न राष्ट्रों, धर्मों, सम्प्रदायों के मध्य समन्वय व बंधुत्व की सोच को जन्म दिया। यही सोच अन्तर्राष्ट्रीयता के जन्म के रूप में आधुनिक विश्व में एकत्व बोध में सहायक हो रही है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है संयुक्त राष्ट्र संघ' तथा उसके अधीनस्थ विश्व संस्थाएँ। जैसा कि द्वितीय विश्व युद्ध के उपरान्त २४ अक्तूबर १९४५ में इस संस्था की स्थापना की घोषणा में कहा गया है—हम संयुक्त राष्ट्र संघ के लोग, शांति, न्याय और प्रगति के लिए आपस में सहयोग हेतु वचनबद्ध हैं। इन शब्दों में 'एक संसार एवं एक मानव परिवार' का वह आदर्श छिपा है जो सभी भेदभावों से ऊपर उठकर जीने और जीने देने का सम्बल प्रदान करता है जिसे स्वामी जी अपने ३ नवम्बर १८९६ को लन्दन में अपने एक प्रवचन में इन शब्दों में व्यक्त करते हैं, "...प्रत्येक व्यक्ति मानो एक बुदबुद है और विभिन्न राष्ट्र मानो कुछ बुदबुदों की समष्टि हैं। क्रमशः राष्ट्रों में परस्पर मेल होता जा रहा है और मेरी धारणा है कि एक दिन ऐसा आयेगा जब राष्ट्र नाम की

कोई वस्तु नहीं रह जायेगी—राष्ट्र-राष्ट्र का भेद दूर हो जायेगा। हम चाहे इच्छा करें या न करें हम जिस एकत्व की ओर अग्रसर होते जा रहे हैं वह एक दिन प्रकाशित होगा ही।"

(विवे० साहि० खण्ड २, पृ० १४६)

अपनी इस धारणा के पीछे स्वामी जी वेदान्त के सत्य को उजागर करते हैं जिसके अनुसार प्रत्येक प्राणी इसी एकत्व बोध के लिए ही संघर्ष कर रहा है। इसी व्याख्यान के अन्त में वे कहते हैं, "अपनी ईर्ष्या, घृणा, मेल और विरोध में से होते हुए हम उसी एक लक्ष्य की ओर संघर्ष कर रहे हैं। हम भले ही इधर-उधर जाने की चेष्टा करें पर अन्त में हम भी जीवन और आनन्द के उस अनन्त समुद्र में अवश्य पहुँच जायेंगे।

भारत के साथ एकत्व बोध

चार वर्ष तक पश्चिम की धरती पर वेदान्त प्रचार की धूम मचा देने वाले स्वामी जी एक पल के लिए भी अपनी मातृभूमि भारत को नहीं भूले। भूलते भी कैसे ? भारत उनकी नस-नस में समाया था वह उनकी हर धड़कन के साथ गुँथा था। तैल धारवत उनका चिंतन उनके लिए मानो जीवन-मरण का प्रश्न हो गया था। तभी तो एक बार वे कह उठे थे 'मैं घनीभूत भारत हूँ।' उनकी यह अवस्था अमेरिका में उस दिन और उजागर हो उठी थी जब एक अत्यन्त प्रतिष्ठित व धनाढ्य व्यक्ति के आमंत्रण के दौरान अतुलित ऐश्वर्य मण्डित कक्ष में उन्हें ठहराया गया था। स्वामी एक पल भी उस कक्ष में सो नहीं सके थे। वे भारत की जघन्य गरीबी को सोच-सोच कर व्याकुल हृदय के साथ अपनी पीड़ा को आंसुओं से हलका करते हुए और फर्स पर लोट पोट होते हुए क्रन्दन कर उठे थे, "माँ जब मेरी मातृभूमि जघन्य दरिद्रता में डूबी हुई है, तो मैं नाम यश लेकर क्या करूँगा ? कौन भारत की जनता को उठायेगा ? कौन उन्हें रोटी देगा ? माँ, मुझे बताओ मैं कैसे उन्हें सहायता दे सकता हूँ ?"

यही व्याकुलता, सहृदयता. गहरी सहानुभूति स्वामी जी की सबसे बड़ी महानता थी और भारत के लिए यही शिकागो सम्बोधन का महत्व है। जिस चिनगारी को इस सम्बोधन के साथ स्वामी जी ने हवा दी थी वह उनके भारत लौटने के बाद दावानल के रूप में देश में भड़क उठी जिसने युगों की जड़ता को तोड़ा और भारत पुनः जाग उठा। वे भारत के लिए विज्ञान व तकनीकी ज्ञान के साथ साथ संगठन शक्ति का विकास मंत्र लेकर जनवरी १८९७ में भारत आये और सम्पूर्ण देश में 'उठो जागो' के मंत्र के साथ संगठन के नये अयाम स्थापित करते हुए उसके हाथों में अपने भावी कार्य की बागडोर थमाते हुए उन्होंने कहा, "हमेशा बढ़ते चलो! मरते दम तक गरीबों और पददलितों के लिये सहानुभूति – यही हमारा आदर्श वाक्य है··· युवको! मैं गरीबों, मूर्खों और उत्पीड़ितों के लिये इस सहानुभूति और प्राणपण प्रयत्न को थाती के तौर पर तुम्हें अर्पण करता हूँ।"

भारत के साथ उनके इस एकत्व बोध में ही विश्व एकत्व के बीज छिपे थे जिसका उद्‌घाटन शिकागो के मंच से सौ वर्ष पूर्व हुआ। जैसा कि भगिनी निवेदिता ने लिखा था, "··· उनके माध्यम से सम्पूर्ण भारत वर्ष को अपनी भावधारा का महत्व आँकने की क्षमता प्राप्त हुई। ·· भारत की धार्मिक चेतना ने ही उनके द्वारा पश्चिम में स्वयं को अभिव्यक्त किया।

जय रामकृष्ण !

शिकागो-संत के प्रति

—डॉ० सुरेश कुमार मिश्र
लोक महाविद्यालय, बनियापुर (बिहार)

हे परिव्राजक ! हे चिर भास्कर
विभ्राट शिखर-नर ज्योतिर्धर
तुम धर्म-सभा के शीर्ष-पुरुष थे ज्ञानी।

नूतन सन्दर्भों के ज्ञाता
हिन्दू-दर्शन के व्याख्याता
नव चेतनता के ज्योति-प्रखर-सन्धानी।

था तमस्तूर्य से जब आवृत्त
यह विश्व पराजित जीवित-मृत
बरसी ऊर्ज्वस्वित अग्नि-मन्त्र तव वाणी।

जो है सब धर्मों की माता
दीनार्त दलित जन का त्राता
वह हिन्दू-धर्म विभा जिसकी कल्याणी।

हैं सभी धर्म नित सत्याश्रित
कोई न श्रेष्ठ पर से गर्हित
सब प्रभु के पथ, अन्तर करते अज्ञानी।

धर्मों का बन्द करो शोषण
कुत्सित हिंसा का नित नर्तन
यह क्षुद्र कूप-मंडक-बुद्धि नादानी।

साधना - पंथ को कर प्रशस्त
बतलाया, 'शिव मानव समस्त"
भारती-भाल-मणि, अभय सदय तुम दानी।

तुम घनीभूत भारत सस्वर
हे कवि-ऋषि ! हे यतिराज अमर !
तुमको शत वन्दन, हे अनिकेत अमानी।

●

धर्म-महासभा पर स्वामी विवेकानन्द का प्रभाव

स्वामी निखिलेश्वरानन्द
श्रीरामकृष्ण आश्रम,
राजकोट
अनुवादक—डॉ. सुरेन्द्र कुमार मिश्र

"अमेरिकावासी बहनो और भाइयो"—इन शब्दों के साथ स्वामी विवेकानन्द ने ११ सितम्बर १८९३ को शिकागो की धर्म-महासभा में अपना प्रथम व्याख्यान प्रारंभ किया। दूसरा शब्द बोलने के पूर्व उस मंच पर बैठे सभी धर्मों के प्रख्यात प्रतिनिधि और लगभग सात हजार श्रोता उत्साह की उत्तुंग लहर से भर गये, सैकड़ों लोग अपनी-अपनी जगह पर खड़े होकर जोरों की तालियाँ बजाने लगे। धर्म-महासभा उन्मत्त हो गयी थी, हर व्यक्ति बारम्बार जयजयकार की तालियाँ बजाता रहा और जब करतल-ध्वनि—जो कई मिनटों तक होती रही थी—थमी, स्वामी विवेकानन्द ने विश्व के कनिष्ठतम देश को, विश्व के प्राचीनतम धर्माचार्यों एवं वैदिक ऋषियों की ओर से धन्यवाद देकर तथा जिसने सम्पूर्ण विश्व को सहिष्णुता और सार्वभौम प्रेम (स्वीकार) की शिक्षा दी थी, उस हिन्दू-धर्म को सभी धर्मों की जननी के रूप में परिचित कराते हुए अपना भाषण प्रारम्भ किया। यह एक लघु वार्ता थी मगर इसकी सार्वजनीनता, इसकी मौलिक गंभीरता तथा उदार मानसिकता ने सम्पूर्ण महासभा को वशीभूत कर लिया। चतुर्दिक करतल-ध्वनि होती रही।

इस प्रकार भारत का वह अज्ञात परिव्राजक तुरंत एक विश्व प्रसिद्ध व्यक्ति हो गया। शिकागो की गलियों में उनके आदमकद चित्र लगाये गये। दो दिन पूर्व स्वामीजी को शिकागो रेलवे स्टेशन के मालगाड़ी के डब्बे में पूरी रात किस तरह निर्वासित, अज्ञात एवं असहाय व्यक्ति की तरह बितानी पड़ी थी। मगर अब धनवानों की अट्टालिकाओं के द्वार उनके शानदार स्वागत के लिए खुले हुए थे। धर्म-महासभा में स्वामी जी की सफलता अनुपम थी।

महानगरीय अत्यन्त प्रसिद्ध एवं रूढ़िवादी समाचार-पत्रों ने उन्हें एक "पैगम्बर और एक भविष्य-द्रष्टा के रूप में उद्घोषित किया। "न्यूयार्क हेराल्ड" ने लिखा—"वे धर्म-महासभा में निस्संदेह महानतम व्यक्ति थे। उन को सुनने के बाद हम लोग महसूस करते हैं कि उन ज्ञानी राष्ट्र में धर्म-प्रचारकों (मिशनरियों) को भेजना कितनी बड़ी मूर्खता है।" न्यूयार्क से प्रकाशित "क्रिटिक" ने उनको "दैवी अधिकार प्राप्त वक्ता" कहा। सभी समसामयिक प्रसिद्ध पत्रों ने उनके सम्पूर्ण भाषणों को उद्धृत किया। अमेरिका के शीर्षस्थ समाचार-पत्रों—"रदरफोर्ड अमेरिकन', "द बोस्टन इवनिंग ट्रांसक्रिप्ट" तथा "द शिकागो ट्रिब्यून" ने स्वामी विवेकानन्द के बारे में युक्तिपूर्ण एवं मार्मिक ढंग से लिखा।

धर्म-महासभा के विज्ञान-विभाग के अध्यक्ष माननीय मरविन मेरी स्नेल ने लिखा—"एक भी धर्माचार ने धर्म-महासभा और अमरीकी जनता के

ऊपर इतनी गहरी छाप नहीं छोड़ी जितनी हिन्दुत्व ने छोड़ी तथा उनमें भी सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण एवं हिन्दू-धर्म के विशिष्ट प्रतिनिधि स्वामी विवेकानन्द थे जो वस्तुतः निःशंक रूप से सर्वाधिक लोकप्रिय और महासभा में सर्वाधिक प्रभावशाली थे।"

लेकिन यह सब विजय और गौरव मात्र व्यक्तिगत नहीं थे। सामान्यतः पूरब की संस्कृति और धर्म तथा खासकर भारतीय संस्कृति और धर्म की प्रतिष्ठा की उच्चता शीघ्र ही आकाश की ऊँचाई पर पहुँच गयी। भारत, एक गुलाम देश भारत, जिसे अंध विश्वासी, असभ्य, असंस्कृत, आदि कहा—समझा जाता था, तुरंत शाश्वत ज्ञान और विश्व-धर्म की पवित्र भूमि बन गया, उन अमरीकियों की नजर में भी बन गया जिन्हें कुछ कट्टरपंथी ईसाई मिशनरियों ने समझा दिया था और जो विश्वास कर चुके थे कि जब तक भारत के अज्ञानी जन-समूह के बीच बाईबिल नहीं भेजी जाती, तब तक उनकी रक्षा नहीं हो सकती। और इसके लिए उन्होंने सब तरह की झूठी कहानियाँ गढ़ ली थीं जो बच्चों की किताबों में स-चित्र वर्णित होती थीं। भारत की एक ईसाई मिशनरी ने अमरीकी बच्चों के मस्तिष्क के विकास के लिए "सॉन्ग्स फार द लिट्ल वन्स एट होम" नाम की पुस्तक में एक भजन-गान लिखा था—

देखो उस प्रतिमा-पूजक माँ को खड़ी/
जहाँ बहती पवित्र धारा/ अपने ही
मातृत्व भरे हाथों से / फेंकती है अपने
शिशु को बीच धारा में। सुनो !
मैं करुण-क्रन्दन सुनता हूँ। भयानक राक्षस
को प्राप्त है शिकार। या अंधा-खूनी निर्झर/
दूर बहा लेता लटके - बच्चे को।
अस्पष्ट - अस्पष्टतर है क्रन्दन
सुनाई देता कानों में
लेकिन माँ का हृदय है नीरव-निश्चल
वह रहती है अविचलित उस क्रंदन से
भेजो, अरे भेजो वहाँ बाइबिल
ताकि पहुँचे उसकी नैतिकशिक्षा,
माँ के हृदय तक
उसके शिशु पा सकें दया
और वह निभा सके माँ की भूमिका

यह एक प्रतीकात्मक कविता है जो ईसाई धर्म-प्रचारकों के गंभीर अपराधों की तरफ संकेत करती है और जिसने उस समय के अमरीकी मस्तिष्क को इन्द्रजाल या सम्मोहन में बहा दिया था। भारत के संबंध में अमरीकी समाज के हर स्तर पर झूठे और बदनाम करने वाले आरोपों को प्रचारित कर डाला गया था और स्वामी विवेकानन्द को अमरीकी मस्तिष्क से उन तमाम गलतफहमियों को दूर करने के लिए वीरता पूर्वक लड़ना था।

ऐसी किताबों में से एक "भारत और इसके निवासी" नाम की पुस्तक जो १८५८ ई० में प्रथमतः प्रकाशित हुई थी, जो भारत संबंधी अनेक झूठी कहानियों से पूर्ण थी, जिसमें अनेक पंक्तियों के उल्लेख के साथ एक मूर्त्ति-पूजक माँ द्वारा अपने बच्चे को पवित्र गंगा नदी में फेंके जाते हुए, एक मनुष्य द्वारा अपनी जीवित पत्नी को जलाए जाते हुए, एक अंधविश्वासिनी माँ द्वारा अपने बच्चे को पक्षियों के भोजन हेतु फेंके जाते हुए—आदि दिखाया गया था।

डेट्रायट के एक ईसाई चर्च में भाषण देते समय स्वामी जी से एक बार यही प्रश्न पूछा गया था कि क्या हिन्दू माताएँ अपने शिशुओं को

घड़ियाल के आगे फेंक देती है तो उन्होंने विनोद-पूर्ण शरारत से किंचित मुस्कुराते हुए कहा था—"हाँ, महोदया, मैं भी अपनी माँ के द्वारा फेंक दिया गया था। लेकिन आप देखती हैं कि मैं इतना मोटा शिशु था कि घड़ियाल ने मुझे निगलने से इनकार कर दिया।" फिर तत्क्षण वे बहुत गंभीर हो गये, और गर्व से बिल्कुल तनी हुई मुद्रा में होकर बादलों की तरह कड़कती आवाज में अपराजेय भाव से बोले "लेकिन देवियो और सज्जनो मैं आपको आश्वस्त करता हूँ कि हमलोगों ने कभी डायनों को नहीं जलाया। सारी सभा शांत हो गयी और सर्वत्र प्रसन्नता की लहर दौड़ गयी।

अमरीका प्रयाण के पूर्व स्वामी विवेकानन्द ने अपने गुरुभाई स्वामी तुरीयानन्द से कहा था—"यह धर्म महासभा इसके लिए (अपनी तरफ उँगली से संकेत करते हुए) होने जा रही है। मेरा मन ऐसा ही कहता है और वह दिन दूर नहीं कि तुम इसे प्रमाणित देखोगे।" आश्चर्यजनक रूप से यह बात अत्यन्त सत्य निकली।

यूँ तो धर्म;महासभा का उद्देश्य था—विश्व के सभी महान धर्मों के प्रतिनिधियों को एकत्र कर आपसी ज्ञान और समझदारी का आदान-प्रदान करना, मगर इसका आंतरिक उद्देश्य था—सम्पूर्ण विश्व पर ईसाइयत की श्रेष्ठता सिद्ध करना। किन्तु सब कुछ विपरीत ही हो गया।

धर्म-महासभा में अपने अंतिम भाषण के दौरान स्वामी विवेकानन्द अपनी अत्यन्त संतोषित और प्रदीप्त मुद्रा में आ गये तथा घोषणा की—न तो ईसाई को हिन्दू या बौद्ध होने की जरूरत है न बौद्ध या हिन्दू को ईसाई होने की जरूरत है बल्कि उत्साहपूर्वक एक दूसरे को पचा लेने की, मिला लेने की जरूरत है और साथ ही अपनी-अपनी निजता को सुरक्षित रखते हुए अपने विकास के नियमों के अनुरूप विकसित होने की जरूरत है।

यदि विश्व-धर्मसभा ने विश्व को कुछ दिखाया है तो यही कि पवित्रता, शुद्धता तथा परोपकार किसी चर्च की ऐकांतिक सम्पत्ति नहीं है तथा धर्म के हर मार्ग (सम्प्रदाय) ने आंतरिक प्रकाश से युक्त श्रेष्ठ नर-नारियों को उत्पन्न किया है। इस साक्ष्य के सन्दर्भ में, यदि कोई व्यक्ति मात्र अपने धर्म की उन्नति और दूसरे के धर्म के ध्वंस का सपना देखता है तो मैं उस पर तरस खाता हूँ, और उसे यह बता देना चाहता हूँ कि अब शीघ्र ही हर धर्म की पताका पर सभी विरोधों के बावजूद यही लिखा जाएगा—सहायता न कि संघर्ष। आपसी समागम न कि कुछ विरोध। समरसता और शांति, न कि संघर्ष।

धर्म-महासभा की यही शिक्षा थी। इससे कट्टरतावाद की पीठ टूटी तो नहीं परन्तु उस पीठ पर पहली बार एक ओर का प्रहार अवश्य हुआ। इसने भारत को पश्चिम की नजर में ही नहीं उठाया बल्कि उसको उसकी अपनी नजर में भी उठाया जिसने एक राष्ट्रीय गौरव को और राष्ट्रीय पुनर्जागरण को जन्म दिया। पश्चिम ने पूर्व से शिक्षा लेनी शुरू की।

लेकिन हमें अभी और लम्बी राह तय करनी है। आज कट्टरवादी विचारों को दूर करने की सख्त जरूरत है। समरसता, शांति, पूर्व एवं पश्चिम के आदर्शों का समन्वय एवं आदान-प्रदान तथा एक नये विश्व के निर्माण की जरूरत है।

आज, जब कि हमलोग शिकागो धर्म-महासभा की शताब्दी मना रहे हैं, अपने पूरे सामर्थ्य भर हम इसे सफल बनाने का प्रयास करें।

स्वामी विवेकानन्द-सन्देश

—डा० रामाजीव प्रसाद
छपरा (बिहार)

वक्ता श्रोता आचार्य शिष्य हम ही, वे हैं कुछ और नहीं,
हम ही स्रष्टा हैं सृष्ट हमीं, भय देने वाला नहीं कहीं।
जीवात्मा की प्रतिमा जिसमें, यह जग सर्वोत्तम मंदिर है,
मानव तन मन की वेदी पर, पूजा करना श्रेयस्कर है।

निर्गुणवादी की पूजा में, मन्दिर गिरजे का नाम नहीं,
मानव ही है जीवित ईश्वर होता न असीम ससीम कहीं।

तुम हो अज अविनाशी आत्मा, सर्वज्ञ ज्योतिमय विद्युत्धर,
तेरे भीतर लहराता है, आनन्द शक्तिपूरित सागर।

है बुद्धि पुलिस का जमादार जो राह साफ कर जाता है
तो हृदय-पथिक द्रुतगामी बन, नित प्रेम भाव भर पाता है।

बन सको बुद्ध सम हृदयवान हो सकते तुम ईसा समान,
ईश्वर तो कोई और नहीं, तुमही ईश्वरता के प्रमाण।

तुम आत्मा हो सम्राट रूप, कर फैलाता भिक्षुक गरीब,
यंत्रणा भोगता बद्ध जीव, मुक्त को स्वर्ग होता नसीब।

मानव न देवता से निर्मित, देवता सभी मानव कल्पित,
पावन को पावन प्रतिबिम्बित, भीतर से बाहर है दीपित।

उस दैव शिकारी से डरकर, खरगोश समान छिपाना सिर,
अपमान नहीं उस भाई का, जो ईश्वर रूप व्यक्त फिर फिर ?

मैं नहीं, मैं नहीं, तुम ही हो, यह अहम् नाश प्रकृत विकास,
हो ग्रहण त्याग पर न्योछावर, है प्रेम द्वेष-विजयी प्रकाश।

ईर्ष्या चरित्र का धब्बा है, यह दृष्टि-दोष है रोगी का,
सबके भीतर आत्मा अपनी, यह आत्म ज्ञान है योगी का।

आत्मा की समुदय-शक्ति अमित, जग में उन्नति अवसर आता,
है संस्कार तो बीज रूप; मानव अदृष्ट-तरु उपजाता।

हों मांसपेशियाँ लोहे की, फौलादी ताकत वाले हों,
चाहिए तरुण हमको ऐसे, साहसी वज्र मन वाले हों।

मन में साहस तन में न शक्ति, मस्तिष्क पड़ा प्रतिभा विहीन,
क्या होगा इन जड़ पिण्डों से, चेतना भरो इनमें नवीन।

देवलोक

—स्वामी अपूर्वानन्द
अनुवादक—स्वामी ज्ञानातीतानन्द
रामकृष्ण आश्रम, राजकोट

महाराज और शरत महाराज का दर्शन लाभ

दो दिन मठ में रहने के पश्चात् तीसरे दिन अन्यान्य संन्यासी और ब्रह्मचारियों के साथ जब मैं महापुरुष जी को प्रणाम करने के लिए गया, उन्होंने स्वयम् ही श्री श्री माता ठाकुरानी की बात उठा कर कहा : "तुमने तो मां को देखा नहीं है। तुम्हारा यह महान सौभाग्य है कि इस समय श्री श्री मां बागबाजार के उद्‌बोधन में हैं— उनका दर्शन करने के लिए जाना। वहाँ पर शरत महाराज भी हैं, उनको प्रणाम करना। बलराम मंदिर में हरि महाराज हैं, उनका भी दर्शन करना। यह निर्देश दे कर दूसरे दिन प्रातः काल जाने के लिए कहा। उन्होंने और भी कहा : उद्‌बोधन में जाकर शरत महाराज, और बलराम मंदिर में महाराज और हरि महाराज के दर्शन कर के कहना कि, मैंने तुमको मठ से भेजा है।" दूसरे दिन प्रातः काल एक ब्रह्मचारी महाराज ने चलती हुई नौका में बैठाकर बागबाजार की तरफ रवाना कर दिया। किराया शायद दो आना था। बागबाजार में नौका से उतर कर पूछ कर जब उद्‌बोधन में मां के घर के सामने पहुँचा तब देखा कि एक घोड़ा-गाड़ी खड़ी है। मेरे पहुँचने के साथ-ही-साथ घोड़ा-गाड़ी चली गयी। उद्‌बोधन में मां के घर में प्रवेश करते ही आफिस घर के सामने एक वृद्ध संन्यासी को देख कर उनको ही स्वामी सारदानन्द समझकर प्रणाम करने जा रहा था, साथ ही साथ वे वृद्ध संन्यासी मेरा भ्रम समझ कर मुस्कुराते हुए बोले : "रुको रुको मैं शरत् महाराज नहीं हूँ। वे गंगा स्नान करने गये हैं, अभी वापस आ जाएंगे— तब प्रणाम करना।' साधु जी के साथ में उद्‌बोधन आफिस के दक्षिण में बरामदे में खड़ा होकर बात कर रहा था, ठीक उसी समय एक स्थूल शरीर वाले वृद्ध साधु भींगा गमछा पहने हुए, कंधे पर समेटी हुई धोती और हाथ में गंगा जल का पात्र— उद्‌बोधन आफिस में आये। साधु जी ने इशारे से बताया कि, यही स्वामी सारदानन्द महाराज हैं। मैं प्रणाम करने जा रहा था— तब उन्होंने गंभीर स्वर में कहा : 'रुको, पहले पैर धो लूँ।' यह कह कर वे छोटे बरामदे में नल पर पैर धोने गये। पैर धो कर बरामदे में खड़े होते ही मैंने उन्हें प्रणाम किया और श्री श्री माँ के दर्शन की इच्छा प्रकट की और साथ ही साथ यह भी उनसे कहा कि, मैं बेलूर मठ से महापुरुष जी के निर्देशानुसार श्री श्री मां के दर्शन करने आया हूँ। उन्होंने सब सुन कर कहा : 'श्री श्री मां कुछ देर पहले ही विशेष प्रयोजन से यहाँ से चली गयीं। आज उनका दर्शन संभव नहीं है। कल संभव है उनका दर्शन हो सकेगा।' श्री श्री मां का दर्शन नहीं होगा—यह सुन कर मन बहुत खराब हो गया। तब दो एक वृद्ध साधुओं को प्रणाम करके बलराम मंदिर जाने का रास्ता पूछ कर राजा महाराज और हरि महाराज का दर्शन करने चल पड़ा। पाँच-सात मिनट में ही बलराम मंदिर पहुँचने पर एक साधु से पूछने पर मालूम हुआ कि, स्वामी ब्रह्मानंद ऊपर तथा स्वामी तुरीयानन्द महाराज नीचे रहते हैं। राजा महाराज के दर्शन के लिए सीढ़ी से ऊपर

जाते ही पास के बरामदे में तीन भक्त एक बेंच पर महाराज के दर्शन के लिए बैठे हुए दिखाई पड़े। दाहिनी तरफ एक घर में महाराज रहते हैं। मैं भी भक्तों के साथ बैठ कर महाराज के दर्शन की प्रतीक्षा करने लगा। आधे घंटे में ही राजा महाराज भीतर के कमरे से बाहर आ कर टहलने लगे। उनको देखने से ही हृदय श्रद्धा और भक्ति से भर आया—मन ही मन उनको प्रणाम किया। कितने सौम्य दर्शन! सुन्दर उज्ज्वल सुवर्ण रंग, उनके पहने हुए गैरिक वस्त्र के रंग के साथ उनके शरीर का रंग मिल गया था। कमनीय उन्नत बलिष्ठ देह—दिव्य-कांति—मानो कोई देवता। वे टहल रहे थे किन्तु उनकी उर्ध्व दृष्टि और अंतरमुख-भाव देख कर ऐसा मालूम होता था कि, आसपास की अवस्था के संबंध में वे बिल्कुल उदासीन हैं। हमलोग जिस बेंच पर बैठे थे उसके सामने से कई बार घूम कर चले गये। किन्तु इस गांभीर्य को भंग कर के किसी को भी उनको प्रणाम करने का साहस न था। हमलोगों अड़वत हाथ जोड़ कर खड़े रहे। इसी तरह कुछ देर घूमने के बाद दक्षिण की तरफ बरामदे में हमलोग की तरफ मुख करके खड़े हुए। तब भक्त लोग एक-एक करके प्रणाम करने के लिए आगे बढ़े—उन्होंने स्थिर भाव से सभी का प्रणाम ग्रहण किया, किन्तु किसी के भी साथ कुछ बात नहीं की और किसी ने भी उनका पैर नहीं छुआ—उनकी मौन उपस्थिति ही हमको परम आशीर्वाद मालूम पड़ी।

अन्त में मैंने झुक कर के भूमिष्ठ हो कर उनके चरण-स्पर्श किये और खड़े हो कर हाथ जोड़कर कहा "मैं बेलूड़ मठ से आया हूँ। महापुरुष महाराज ने हमको आपको प्रणाम करने के लिए भेजा है।" उन्होंने प्रसन्न होकर कहा : ओह! तुम मठ से आये हो! तारक दा ने भेजा है? वे कैसे हैं? मठ में सब अच्छा है तो?' इत्यादि। महापुरुष महाराज अच्छे हैं और मठ का कुशल समाचार कहा। केवल यही बात हुई! उनके गले का स्वर इतना मधुर ओर ममतापूर्ण था कि, इन्हीं कुछ बातों से मेरा हृदय भर गया। ठाकुर का दर्शन तो भाग्य में नहीं था, किन्तु उनके मानसपुत्र को प्रसन्नमूर्ति स्थूल शरीर में देखकर मन में अव्यक्त आनन्द का सिहरन हुआ। थोड़ी देर में ही वे बगल के घर में चले गये—मैं मुग्ध नेत्रों से उस देव-मानव की तरफ देखता रहा।

(क्रमशः)

"भारत के राष्ट्रीय आदर्श हैं: त्याग और सेवा। आप इन धाराओं में तीव्रता उत्पन्न कीजिए, और शेष सब अपने आप ठीक हो जायगा।"

—स्वामी विवेकानन्द

शंकर चरित्र

—इन्द्रदयाल भट्टाचार्य
अनुवादक—स्वामी विदेहात्मानन्द
रामकृष्ण मिशन, रायपुर (म०प्र०)

पंचम अध्याय

दिग्विजय

मण्डन के समान महापण्डित एक बालक संन्यासी से पराजित हो गये हैं और यही नहीं बल्कि उनका शिष्यत्व ग्रहण कर संन्यासी वेष में उनके साथ चले गये हैं—यह समाचार केवल माहिष्मती नगरी तक ही सीमित नहीं रहा। शंकर भी एक नगर से दूसरे नगर में जाकर ब्रह्मविद्या का प्रचार करने लगे। उनके किसी नगर में पहुँचने के पूर्व ही वहाँ के निवासी उनके बारे में अनेक प्रकार की झूठी-सच्ची बातें सुन चुके होते और उन्हें देखने को व्यग्र रहते। इतनी अल्प आयु में ही ऐसा शास्त्रज्ञान, वाग्मिता, तर्कक्षमता और सर्वोपरि उनके व्यक्तित्व का माधुर्य लोगों को आशा से भी अधिक मोह लेता। उनकी शिष्य-संख्या क्रमशः बढ़ती गयी। लोग उनसे इतना आकृष्ट होते कि वे जहाँ कहीं भी जाते, सैकड़ों लोग उनके साथ-साथ चलते। जहाँ कहीं भी वे पहुँचते वहाँ मानो आनन्द का मेला लग जाता। विभिन्न मतों के अनुयायी जब उनसे तर्क-वितर्क करने के पश्चात् अद्वैत मत अपनाते, तब उन लोगों के प्राण में एक अपूर्व शान्ति का बोध होता। शंकर को वे प्राणों के देवता मानकर उनके चरणों में आत्मसमर्पण करते।

आचार्यदेव प्रचार करते थे—"सभी प्रकार के दुःख-तापों से चिर काल के लिए मुक्ति पाना ही धर्म का उद्देश्य है। अव्याहत ज्ञान और पूर्णशान्ति-स्वरूप ब्रह्म के साथ एकत्व हुए बिना दुःख-ताप दूर नहीं हो सकते। शास्त्रों में भिन्न-भिन्न अधिकारी के लिए जिन यागयज्ञ, पूजा, उपासना, योगसाधना आदि विभिन्न धार्मिक कार्यों का निर्देश मिलता है, उन सबका उद्देश्य उसी पूर्ण-शान्तिमय अवस्था की उपलब्धि है। यदि साधना के द्वारा कोई किसी देवता का दर्शन पाता है, तो केवल उसी से कामनाएँ दूर नहीं हो जातीं। वैष्णव आदि साधक यदि ऋषिप्रणीत प्रणाली से इष्टचिन्तन करें, तो अन्त में उन्हें ज्ञान और मुक्तिलाभ होता है।"

विविध सम्प्रदायों के अनेक लोग आचार्य के उपदेश सुनकर अपना भ्रम समझ गये। तब उन्होंने कृपादृष्टि अथवा स्पर्श के द्वारा उन लोगों को अद्वैततत्त्व का बोध करने की शक्ति प्रदान की। इससे किसी-किसी को उनके मत की यथार्थता समझ में आ गयी। जिनके चित्त शुद्ध थे वे शक्ति पाते ही समाधिस्थ होकर अद्वैततत्त्व का प्रत्यक्ष अनुभव करने लगे, फिर अन्य कोई-कोई अपने इष्टदेवता का साक्षात् दर्शन पाकर कृतार्थ हुए। धर्मव्याख्या और विचार के द्वारा उन्होंने भ्रान्त मतों व आचारों को दूर किया और आध्यात्मिक शक्ति का वितरण करके लोगों के मन में सुप्त धर्मभाव को जगाने लगे।

उग्रभैरव

श्रीशैल में धर्मप्रचारार्थ जाने पर बहुत से लोगों ने शंकर का मत ग्रहण कर लिया, यहाँ तक कि उग्रभैरव नामक एक कापालिक भी अपना मठ छोड़कर उनका शिष्य हो गया। कापालिक सम्प्रदाय के लोग बड़े भयानक होते थे और उन दिनों देश में उनका प्रभाव भी खूब था। कारण यह था कि लोगों का अनिष्ट करने की क्षमतायुक्त इनमें तरह-तरह की सिद्धियाँ होती थीं तथा उनके दल के लोगों की संख्या भी कुछ कम न थी। मनुष्य की खोपड़ी में ही उनका आहार, मद्यपान आदि सब होता था। संन्यासी के कमण्डलु के समान ही ये लोग भी सर्वदा अपने साथ एक नर-कपाल रखते थे, इसी कारण लोग इन्हें कापालिक कहते थे।

कापालिक ने सेवा-सुश्रूषा के द्वारा आचार्यदेव का विश्वास अर्जित कर लिया और उनके साथ रहने लगा। एक दिन उन्हें एकाकी पाकर वह बोला, "अलौकिक शक्तियों की प्राप्ति के लिए मैंने बहुत दिनों तक भैरव की आराधना की थी, परन्तु किसी योगी अथवा राजा की बलि न दे पाने के कारण भैरव को प्रसन्न नहीं कर सका। उस सिद्धि की प्राप्ति के लिए मेरा मन सतत व्याकुल रहता है। मैं मानता हूँ कि ब्रह्मज्ञान से पूर्णशन्ति मिलती है, परन्तु मैं किसी भी प्रकार सिद्धि की बात को भुला नहीं पा रहा हूँ। आप महायोगी हैं, ब्रह्मज्ञान के द्वारा पूर्णकाम हो गये हैं, इस जगत् में अब आपके लिए कुछ भी प्राप्य नहीं है। यदि शिष्य के कल्याणार्थ आप अपना यह निष्पाप शरीर बलि रूप में प्रदान करें, तो मेरा बड़ा उपकार होगा। दधीचि इन्द्र के स्वर्गराज्य की प्राप्ति के लिए अपनी देह देकर अक्षयकीर्ति छोड़ गये हैं। शिष्य की महाशक्ति की उपलब्धि के लिए अपना पवित्र शरीर दान करने से आपको भी वैसा ही अक्षय यश प्राप्त होगा।"

आचार्य शंकर में स्वार्थबोध बिल्कुल भी नहीं था। वे भगवान के यंत्र रूप में कार्य किये जा रहे थे। उनका मन सर्वदा ब्रह्मभाव में तन्मय रहता था। किसी सांसारिक विषय पर चिन्तन आदि न करने के कारण उनका स्वभाव बालकवत् था; पूर्णज्ञानी परमहंसों का ऐसा ही स्वभाव होता है। ये लोग मनुष्यों के भीतर का छल-प्रपंच समझ नहीं पाते, सभी बातों को सत्य मानकर विश्वास कर लेते हैं। भगवान की प्रेरणा से शंकर का देह-मन धर्मप्रचार के कार्य में लगा रहता था पर इसमें उनका कोई अपना कर्तव्यबोध या संकल्प नहीं था। कापालिक के प्रस्ताव में उन्हें कुछ भी आपत्तिजनक नहीं लगा। परन्तु उन्हें लगा कि शिष्यगण शायद इस प्रस्ताव पर सहमत न हों, अतः दोनों ने आपस में सलाह करके निश्चित किया कि निकट के ही किसी घने जंगल में भैरव-पूजा का आयोजन किया जाय, फिर निर्दिष्ट समय पर संकेत पाकर वे गोपनीयतापूर्वक वहाँ पहुँच जायेंगे और शिष्य की अभिलाषा पूर्ण करेंगे।

परवर्ती आमावस्या की रात को कापालिक ने एक वन में भैरव-पूजा का आयोजन किया। आधी रात को जब सभी शिष्य अपने-अपने आसन पर सो गये, तो कापालिक का संकेत पाकर शंकर धीरे से उठकर पूजा के स्थान पर जा पहुँचे। कापालिक परम आनन्द के साथ भैरव पूजा तथा बलि-संबंधी क्रियाओं में जुट गया। शंकर की दृष्टि में यह जगत् तुच्छ था, शरीर एक भ्रम मात्र था, समाधि के आनन्दसागर में मन के लीन हो जाने पर उन्हें देह की स्मृति तक नहीं रह जाती थी। वे कापालिक को यथाशीघ्र अपना अभीष्ट सिद्ध कर लेने का आदेश देकर योगासन में बैठ गये।

पद्मपाद भी गुरु के पास ही अपने आसन पर निद्रामग्न थे। स्वप्न में उन्होंने देखा कि एक कापालिक गुरुदेव की हत्या कर रहा है। इसके साथ ही वे जग गये और गुरुदेव को उनके आसान पर न देख अधीर भाव से उन्होंने गुरुभाइयों को जगाया। वे इधर-उधर दौड़ पड़े, परन्तु गुरुदेव उन्हें कहीं दिखे नहीं। पद्मपाद ने जब अत्यन्त व्याकुल होकर नृसिंहदेव का स्मरण किया, तो वे पद्मपाद के शरीर में आविर्भूत हुए। पद्मपाद के अंग-प्रत्यंग भयंकर हो उठे और वे गर्जन करते हुए कापालिक के पूजास्थान की ओर दौड़ने लगे। शिष्यगण भी किसी अज्ञात आपदा की आशंका से उनके पीछे हो लिये। पद्मपाद सबको पीछे छोड़ अविलम्ब पूजास्थल पर जा पहुँचे। उस समय कापालिक हाथ में सिन्दूर मण्डित खड्ग लिये शंकर का मस्तक काटने ही वाला था। पद्मपाद की भीषण मूर्ति देखकर उसने सिहरकर तलवार उठायी। परन्तु पलक झपकते न झपकते पद्मपाद ने लपककर उसके हाथ से तलवार छीनकर उसी का सिर काट डाला और भीषण गर्जना से पूरे वन-प्रान्तर को गुँजाने लगे। पीछे-पीछे दौड़कर आते हुए शिष्यों में से कोई तो यह दृश्य देखकर भय से अचेत हो गया, कोई काँपने लगा और कोई स्तम्भित होकर खड़ा रहा। इस हलचल के फलस्वरूप शंकर की समाधि भंग हो गयी। वे पद्मपाद के शरीर में नृसिंहदेव का आविर्भाव देखकर उनकी स्तुति करने लगे। नृसिंह भगवान के प्रसन्न होकर तिरोहित हो जाने के पश्चात् पद्मपाद का शरीर काफी समय तक मूर्छित पड़ा रहा। गुरुभाइयों की सेवा-सुश्रूषा से उनकी बेहोशी टूटी। दयामय आचार्यदेव कापालिक के वध पर व्यथित होकर पद्मपाद के प्रति नाराजगी व्यक्त करने लगे। परन्तु पद्मपाद इससे विन्दुमात्र भी विचलित हुए बिना बोले, गुरुहत्या को उद्यत व्यक्ति का वध करके मैं सैकड़ों बार नरक जाने को तैयार हूँ। आपके शरीर से जगत के हजार-हजार लोगों का परम कल्याण होना सम्भव है। इस देहरक्षा के निमित्त मेरे समान एक व्यक्ति का नरकभोग करना तो साधारण बात है।" पद्मपाद की गुरुभक्ति तथा देवीशक्ति देखकर सबके चित्त में उनके प्रति असीम श्रद्धा का उदय हुआ। आज इस संकट से उद्धार पाकर सभी परम आनन्दित थे। जो लोग पहले पद्मपाद के प्रति ईर्ष्या का भाव पोषित करते थे, आज की घटना देख वे सभी लज्जित हुए।

हस्तामलक

श्रीवेली नामक स्थान में अनेक निष्ठावान ब्राह्मण निवास करते थे। वे लोग सर्वदा यागयज्ञ तथा वेदादि शास्त्रों के अध्ययन में लगे रहते थे। प्रभाकर नामक एक धर्मपरायण ब्राह्मण भी उनमें से एक थे। धन-धान्य का उन्हें अभाव न था, परंतु अपने इकलौते पुत्र के मूक व बधिर होने के कारण वे बड़े दुःखपूर्वक दिन बिताते थे। उनका पुत्र उस समय तेरह वर्ष का था। वह देखने में बड़ा सुन्दर था, उसका मुखमण्डल ज्योतिर्मय था, परन्तु उसके ज्ञान-बुद्धि का कोई आभास नहीं मिलता था। भूख-प्यास, लज्जा-घृणा, ईर्ष्या द्वेष और यहाँ तक कि सर्दी-गर्मी का भी बोध उसे होता है या नहीं, पता नहीं चलता था। भोजन देने पर कभी वह खाता, तो कभी निराहार रह जाता। समवयस्क लड़के उस पर कितना ही अत्याचार करते, पर वह कोई प्रतिकार नहीं करता। मुख से सदा प्रसन्न लगता, देखने में 'बोका' जैसा नहीं प्रतीत होता। ब्राह्मण ने सोचा कि सम्भव है इस पर किसी उप-देवता का आवेश हो। अतः उन्होंने बहुत सा मंत्र-तंत्र, होम-हवन तथा झाड़-फूक कराया, परन्तु बालक के स्वभाव में कोई परिवर्तन दृष्टिगोचर नहीं हुआ।

धर्मप्रचार करते हुए जब शंकर उस स्थान पर पहुँचे, तो प्रभाकर अपने पुत्र के साथ उनसे मिलने को आये। उन्होंने पुत्र से आचार्यदेव के चरणों में प्रणाम करने को कहा। प्रणाम के पश्चात् बालक के भूमि पर ही पड़े रहने पर, शंकर ने स्वयं अपना हाथ बढ़ाकर उसे उठाया। ब्राह्मण अपने पुत्र का स्वभाव बताते हुए उनसे ठीक कर देने का अनुरोध करने लगे। शंकर ने बालक से पूछा, "वत्स, तुम कौन हो और क्यों ऐसी अवस्था में पड़े हो?" आश्चर्य की बात तो यह है कि बालक ने अपने मधुर कण्ठ से संस्कृत भाषा के ज्ञानपूर्ण श्लोकों में इस प्रकार आत्मपरिचय दिया कि सबने उसे ब्रह्मज्ञानी समझ लिया। शंकर ने ब्राह्मण से कहा, "यह बालक अपने पूर्व संस्कारों की बदौलत विद्वान और ब्रह्मज्ञानी है। अन्यथा, जिसने कभी अध्ययन किया नहीं, वह आज किस प्रकार इन अपूर्व श्लोकों की आवृत्ति कर पाता? इसे संसार में आसक्ति नहीं, देह में ममत्व का बोध नहीं, इसे रखकर तुम क्या करोगे? यह लड़का मुझे दे दो।" ब्राह्मण ने सोचा कि बात तो ठीक है। लड़का मेरे पास रख कर तो सुखी है नहीं और मैं भी उसके चलते सुखी नहीं हूँ। इन महात्मा के पास लड़का अच्छा ही रहेगा। यह सोचकर पुत्र उन्होंने शंकर को सौंप दिया। हाथ पर रखे आँवले के समान उसे ब्रह्म की उपलब्धि हुई थी, इस कारण शंकर ने उसे 'हस्तामलक' के नाम से अभिहित किया।

एक दिन शिष्यों के साथ विविध विषयों पर चर्चा के दौरान हस्तामलक का पूर्ववृत्तान्त इस प्रकार कहा था—एक बार प्रभाकर की पत्नी अपने दो वर्ष के बच्चे को साथ लेकर यमुना में स्नान करने गयी थीं। यमुना के तट पर एक योगी निवास करते थे। ब्राह्मणी उन्हीं के पास अपने बच्चे को बैठाकर नदी में स्नान करने चली गयीं। थोड़ी देर बाद योगी के अन्यमनस्क हो जाने पर बालक खेलते-खेलते नदी में गिर पड़ा। उसे तत्काल ही पानी से निकाला गया, परन्तु उसके प्राण बचे नहीं। ब्राह्मणी बड़े ही आर्तस्वर में रोने लगी। योगी का हृदय करुणा से द्रवीभूत हो गया। उन्हीं की असावधानी से तो ब्राह्मणी पुत्रहीन हो गयी थी, अतः योगबल से देह त्यागकर वे उस दो वर्ष के शिशु के शरीर में प्रविष्ट हो गये। ब्राह्मणी पुत्र को लेकर घर लौट गयीं. परन्तु इस घटना का किसी के सामने उल्लेख नहीं किया। योगी भी संसार बंधन से बचने के लिए बहिर्जगत् के प्रति पूर्ण उदासीनता दिखाते रहे।

शृंगेरी मठ

कर्नाटक राज्य में तुंगभद्रा नदी के तट पर शृंगगिरि नामक एक पवित्र स्थान है। अत्यन्त प्राचीन काल से ही वहाँ ऋष्यशृंग मुनि का आश्रम था। उस स्थान को साधना के अनुकूल समझकर शंकर ने वहाँ एक मठ की स्थापना की। शंकर की प्रार्थना पर देवी सरस्वती चिरकाल के लिए 'बहुजनहिताय बहुजनसुखाय' उस मठ में प्रतिष्ठित रहने को राजी हुईं। तब तक आचार्यदेव की शिष्य संख्या काफी बढ़ चुकी थी। उन्हें शास्त्रपाठ तथा साधना के द्वारा आदर्श के अनुरुप जीवन बिताने में समर्थ करने के लिए उन लोगों को साथ लेकर वे कुछ समय तक उसी मठ में निवास करने लगे।